इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी - 20
भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य

खंड

3

भारतीय दलित कहानी–II

इकाई 10
'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' और 'उम्मीद अब भी बाकी है' 5

इकाई 11
'गाँव का कुआँ' और 'परती जमीन' 15

इकाई 12
'अमावस' और 'मोची की गंगा' 29

इकाई 13
'हड्डा रोडी और रेहडी' और 'बिच्छू' 41

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. ओम अवस्थी
गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

प्रो. गोपाल राय
सी–3, कावेरी, इग्नू आवासीय
परिसर, मैदान गढ़ी,
नई दिल्ली

प्रो. नामवर सिंह
32–ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

प्रो. नित्यानंद तिवारी (सेवानिवृत्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन (सेवानिवृत्त)
ए–21/71, कुतुब एन्क्लेव,
फेज–I, गुड़गांव, हरियाणा

प्रो. प्रेम शंकर (सेवानिवृत्त)
बी–16, सागर विश्वविद्यालय
परिसर, सागर

प्रो. मुजीब रिज़वी (सेवानिवृत्त)
220, जाकिर नगर
नई दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

प्रो. लल्लन राय (सेवानिवृत्त)
3, प्रीत विला, समर हिल, शिमला

प्रो. शिवकुमार मिश्र (सेवानिवृत्त)
एफ–17, मानसरोवर पार्क कालोनी
पंचायती हॉस्पिटल मार्ग
बल्लभ विद्यानगर, गुजरात

स्व. शिव प्रसाद सिंह
वाराणसी

प्रो. सूरजभान सिंह
आई–127, नारायणा विहार, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण

पाठ लेखक	इकाई	पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
डॉ. राजकुमार दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	10	**प्रो. विमल थोरात** मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली
डॉ. निरंजन सहाय महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ.प्र	11	
प्रो. टी.वी. कट्टीमणी कुलपति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (मध्य प्रदेश)	12	**(इकाई 10 का संशोधन प्रो. विमल थोरात)**
प्रो. विमल थोरात मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	13	**(इकाई 12 का संशोधन रमेश यादव)**

पाठ्यक्रम निर्माण एवं संपादन सहयोग	आवरण चित्रकार	सचिवालयी सहयोग
डॉ. शिवदत्ता वावळकर आर.टी.ए., मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	**सवी सावरकर** नई दिल्ली	**मिथिलेश प्रसाद/कौशल्या सैनी** मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

मुद्रण निर्माण

सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

जुलाई, 2014

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2014

ISBN-978-81-266-6782-6

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी–166ए, भगवती विहार, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

मुद्रक : गीता ऑफसेट प्रिंटर्स प्रा. लि., सी–90, ओखला फेस–1, नई दिल्ली–110020

खंड परिचय

एम.एच.डी. 20 'भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य' इस पाठयक्रम का यह तीसरा खंड 'भारतीय दलित कहानी–II' है। दूसरे खंड में आप ने मराठी और गुजराती दलित कहानियों का अध्ययन किया है। इसी कड़ी में इस खंड के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में लिखित, विशेषतः उड़िया, तेलुगु, कन्नड और पंजाबी के प्रतिनिधिक कहानीकारों की कहानियों का अध्ययन करना है। इन प्रत्येक भाषा की दो–दो कहानियों को अध्ययन के लिए चयनित किया गया है। इन कहानियों के अध्ययन से आप भारतीय दलित कहानी की संवेदना और स्वरूपगत विशेषताएँ, रचना–विधान और कहानी लेखन के सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकारों को समझ सकेंगे। कहानीकारों की वैचारिकी और प्रतिबद्धता को भी जान सकेंगे। इस खंड में कुल चार इकाईयाँ है–

इकाई 10 'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' और 'उम्मीद अब भी बाकी है'

इकाई 11 'गाँव का कुआँ' और 'परती जमीन'

इकाई 12 'अमावस' और 'मोची की गंगा'

इकाई 13 'हड्डा रोडी और रेहडी' और 'बिच्छू'

खंड की इकाई 10 उड़िया के प्रसिद्ध कहानीकार संजय कुमार बाग की 'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' और समीर रंजन सेठी की 'उम्मीद अब भी बाकी है' कहानियों पर आधारित है। इन दोनों कहानियों में प्रायः दलित साहित्य में अभिव्यक्त होनेवाले प्रतिरोध के स्वर मौजूद है। ओडिया समाज में विद्यमान जातिभेद और हाशियाकृत जीवन जीने के लिए मजबूर हुए दलितों की वास्तविकता का चित्रण है। शिक्षा, नौकरशाही, पुलिस प्रशासन आदि क्षेत्रों में होने वाले दलित उत्पीडन को ओडिया के कहानीकारों ने उजागर किया है। इस इकाई में ओडिया दलित चेतना के विभिन्न पहलुओं को समझना है।

खंड की इकाई 11 तेलुगु के कहानीकार कोलाकलूरी इनाक की 'गाँव का कुआँ' और बोया जंगय्या की 'परती जमीन' कहानियों पर आधारित है। यह कहानियाँ अत्यंत प्रभावी ढंग से भारतीय गावों के सवर्ण वर्चस्ववादी तबकों की असलियत को बयान करती है। मनुष्यता विरोधी रचे जाने वाले षड्यंत्र, बेगार, अस्पृश्यता, स्त्रियों का शोषण आदि के लोमहर्षक दृश्यों को तेलुगु के कहानीकारों ने बड़े साहस से मुखर किया है। इस इकाई के अध्ययन से आप तेलुगु समाज में दलित चेतना का अभ्युदय, कहानियों में अभिव्यक्त दलित चेतना के स्वर, कहानियों की भाषा एवं शिल्पगत नवीनता से परिचित होंगे।

खंड की इकाई 12 कन्नड के कहानीकार देवनूर महादेव की 'अमावस' और मोगली गणेश की 'मोची की गंगा' कहानियों पर आधारित है। इन कहानियों में दलित समाज की सांस्कृतिक विरासत को बिम्ब, मिथक और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है। कन्नड दलित लेखन की यह विशेषता है कि प्रत्येक रचनाकार समकालीन यथार्थ को दर्शाने के लिए अतीत की घटनाएँ एवं ऐतिहासिक स्त्रोतों की खोजबीन करता है और उसे रचना में बड़ी कुशलता से प्रस्तुत करके भविष्य निर्माण के लिए संदेश भी देता है। इस इकाई की कहानियाँ भी इस विशेषता की परिचायक है। इस इकाई के अध्ययन से आप कन्नड दलित लेखन की विशिष्टता, नवीनता तथा रचनात्मक अवदान से परिचित होंगे।

खंड की इकाई 13 पंजाबी के कहानीकार गुरमीत कडियालवी की 'हड्डा रोडी और रेहडी' और अतरजीत की 'बिच्छू' कहानियों पर आधारित है। यह कहानियाँ भारत के पंजाब प्रदेश में स्थित जातिवाद, भेदभाव और दलितों के सामाजिक–आर्थिक शोषण को उजागर

करती है। इन कहानियों में दलित जीवन की विडम्बनाएँ और परिवर्तनकामी चेतना के स्वर मुखर हुए है। इस इकाई में आप पंजाबी दलित कहानियों में अभिव्यक्त विचारों को समझते हुए मानवीय गरिमा से युक्त जीवन जीने के लिए आवश्यक मूल्यों की पहचान कर सकेंगे। साथ–ही यह भी जान पायंगे कि पंजाबी के दलित कहानीकारों ने अपने सृजन, वैचारिकी और प्रतिबद्धता से किस तरह समग्र पंजाबी साहित्य को एक नई दिशा दी है।

इस सम्पूर्ण खंड के महत्वपूर्ण प्रश्न अंत में दिये गए हैं। साथ–ही उपयोगी पुस्तकों की सूची दी है। संभव हो तो आप इन पुस्तकों का अध्ययन भी कीजिए, इससे आप को अध्ययन में और अधिक सहायता मिलेगी।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' और 'उम्मीद अब भी बाकी है'

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 रचनाकारों का परिचय

10.3 ओडिया में दलित साहित्य आंदोलन और चेतना का विस्तार

10.4 ओडिया दलित कहानियों का प्रतिपाद्य और चरित्र चित्रण

10.5 सारांश

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में दो ओडिया दलित कहानियों के संबंध में विमर्श किया गया है। ये कहानियाँ हैं : संजय कुमार बाग की 'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' और समीर रंजन सेठी की 'उम्मीद अब भी बाकी है'। इन कहानियों में हमें प्रायः दलित साहित्य में मिलने वाला विरोध का स्वर सुनाई देता है। इन कहानियों को पढ़कर आप ओडिया समाज में विद्यमान जाति-प्रथा में हाशिए पर पड़े और अनपेक्षित अमानवीय जीवन जीने को मजबूर दलितों की वर्तमान अवस्था को समझ सकेंगे। ये कहानियाँ जिन मुद्दों को उठाती हैं, उन्हें समझने के लिए अनुच्छेद में प्रतिपाद्य और चरित्र-चित्रण के संबंध में चर्चा की गई है। ओडिया दलित चेतना के उभार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देते हुए ओडिया दलित साहित्य के निर्माण को स्पष्ट किया गया है। अतः इस इकाई के अध्ययन के बाद आप परिचित होंगे :

- ओडिया जातीय समाज एवं दलितों के विरूद्ध होने वाले जातीय भेदभाव के पहलुओं से;
- उड़ीसा में जाति-प्रथा के विरूद्ध उभरे विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों से;
- ओडिया दलित चेतना का उभार तथा ओडिया दलित साहित्य की पृष्ठभूमि से;
- शिक्षा, नौकरशाही, पुलिस प्रशासन आदि में जातीय-गठजोड़ से; और
- ओडिया दलित कहानियों में अभिव्यक्त दलित जीवन का यथार्थ और संघर्ष चेतना के पहलुओं से।

10.1 प्रस्तावना

भारतीय जाति आधारित संरचना में उच्च कोटी और निम्न कोटी अर्थात सवर्ण और अस्पृश्य के विभाजन ने, न केवल सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थितियों का निर्धारण किया, बल्कि ज्ञान अर्जित करने के अधिकार से दलितों को वंचित कर दिया गया। यह वंचित समुदाय सदियों तक (साढ़े तीन हजार वर्ष) अछूत के रूप में घृणित नजरों से देखा गया। धर्मशास्त्रों के द्वारा इस विधि-विधान को कायम रूप से प्रथा का रूप दे दिया। जिससे कि कोई व्यक्ति इसके विरोध में विद्रोह न कर सकें। परिणामतः दलित जो हजारों

वर्षों से शिक्षा से वंचित रहें, उन्हें आज के आधुनिक एवं स्वाधीन भारत में भी शिक्षा हासिल करने में जातिव्यवस्था द्वारा लगाई गई पाबंदियों से जूझना पड़ता है। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो पायेंगे कि भारतीय जनसंख्या के अनुपात में दलितों के शिक्षित होने का दर बहुत कम है। इससे हमें अंदाजा हो सकेगा कि पिछड़े समाजों में दलितों का शिक्षा का दर सबसे कम क्यों है? आजादी के बाद शिक्षा संबंधी बनी नीतियों को पूर्णरूपेण लागू करने की कोशिशें जातिवादी प्रवृत्तियों के कारण सफल नहीं हो पाती। प्रस्तुत इकाई में शामिल कहानियाँ उम्मीद अभी बाकी हैं तथा वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी शिक्षा के क्षेत्र में जातिवादी भेदभाव तथा अस्पृश्यता के कारण दलित बच्चों को शिक्षा से वंचित किया जाता है और सोची समझी साजिश के तहत् यह अमानवीय उत्पीड़न किस प्रकार सरेआम जारी है की सच्चाई से परदा उठाती है। शिक्षण संस्थाएं विशेषकर गांव-देहात, कस्बों एवं उनके शिक्षकों में जातिवादी घृणा और तिरस्कार के कारण दलित बच्चों को अपमानित करके पाठशाला से बाहर रखने की प्रबल प्रवृत्ति नजर आती हैं। पाठशालाओं के शिक्षक, कंपनियों के अधिकारी, गांव पंचायत के मुखिया और साहुकार, महाजन आदि दलित बच्चों के पढ़ने की ईच्छा को कुंठाओं में बदलकर उन्हें उनके पूर्व परंपरागत कार्य, व्यवसाय करने पर मजबूर करके जाति दंभ का प्रदर्शन करते हुए नहीं शरमाते। मुन्ना के बाबा जिस फैक्टरी में काम करते थे, उसके संगणीकरण के कारण उन्हें काम से हटा दिया। अपने अधिकार की खातीर उन्होंने मजदूर संगठन द्वारा अपनी माँग को मैनेजिंग डायरेक्टर के समक्ष रखा तो वह इसे चुनौति मान बैठा। मुन्ना का नाम फैक्टरी के स्कूल से ही काट दिया गया और साथ में जाति दंभ भरा सनातनी जुमला भी उछाला " देखेंगे, साला यह हाड़ी कैसे अपने बेटे को पढ़ाएगा और ऑफिसर बनाएगा।" एक ऑर्डर निकला जिसके हिसाब से केवल जो स्वीपर का काम कर रहा है उसी का बेटा–बेटी पढ़ेगा, उसके अलावा किसी दूसरे हाड़ी को नहीं पढ़ाया जाएगा। प्रस्तुत कहानी जातिप्रथा के दंश को झेलते दलित बाप और बेटे के अंतहीन शोषण-उत्पीड़न-वंचना को अभिव्यक्त करने की ईमानदार कोशिश हैं।

'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' स्पष्टतः दलितों को शिक्षा से वंचित कर रखने की भेदभाव की नीतियों को उजागर करती हैं। रोज-रोज की अवमानना, बेतहाशा पिटाई और शिक्षकों, सहपाठियों से मिले तिरस्कार के परिणामस्वरूप भय से आक्रांत दलित बच्चे पाठशाला में जाने से इंकार करते हैं। ब्राह्मणवाद की संकीर्ण मानसिकता के शिकार यह बच्चे अंततः शिक्षा से वंचित होकर बाल मजदूर बनकर अंधेरे भविष्य में गोते खाते हुए जीवन बिताते हुए मिलते हैं। प्रस्तुत इकाई की दोनो कहानियाँ शिक्षा नीति के उदात्त विचार और उद्देश्य को धराशायी करने में सफल होते यथास्थितिवादी विचारधारा की कठोर आलोचना करती हैं। आइये अब हम दोनों कहानियों के पाठावलोकन और विश्लेषण-मूल्यांकन द्वारा सामाजिक यथार्थ की इस सच्चाई को जानने का प्रयास करें।

10.2 रचनाकारों का परिचय

संजय कुमार बाग ओडिया के युवा कवि एवं कहानीकार हैं। उड़ीसा के कालाहांडी जिला के निवासी हैं। सम्प्रति वे दिल्ली विश्वविद्यालय के आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में 'लोकक्रीड़ा' पर शोधकार्य कर रहे हैं। दलितों के मुद्दों से संबंधित उनकी कई कविताएँ और कहानियाँ विभिन्न ओडिया साहित्यिक पत्रिकाओं जैसे-झंकार, पश्चिमा, अमृतायन, डेरना आदि में प्रकाशित हुए हैं। उनकी कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ हैं - 'लक्ष्मीपुराण', 'सरस्वती 'महात्म्य', 'एक अपमृत्यु सम्पक' आदि।

समीर रंजन सेठी मूलतः कहानीकार और निबंधकार हैं। सम्प्रति वे श्रीराम भंज मेडिकल कॉलेज, कटक में असिस्टेंट प्रोफ़ेसर के पद पर सेवारत हैं। उन्होंने कई पुस्तकों की रचना की है। उनका प्रथम कहानी-संकलन 'बाँबी में बदलता मनुष्य' है, जिसे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के एक शोधछात्र ने एम.फिल. प्रोजेक्ट के रूप में अंग्रेजी में अनुवादित किया है। वे मासिक ओडिया साहित्यिक पत्रिका 'युववीणा' के सम्पादक हैं। समीर रंजन सेठी ने दलितों के उत्पीड़न, शोषण और वेदना को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है।

इनकी कहानियों के विवेचन से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि ओडिया के दलित लेखक अपना लेखन किन आधारों पर करते हैं।

10.3 ओडिया में दलित साहित्य आंदोलन और चेतना का विस्तार

महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और अन्य राज्यों की भाँति उड़ीसा में कोई तीव्र दलित प्रतिरोध नहीं देखा गया है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उड़ीसा में विरोध का दलित स्वर मौन रहा है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उड़ीसा के समाज में जातीय उत्पीड़न समूहों द्वारा समय-समय पर विरोध का स्वर उठता रहा है। उड़ीसा में बौद्ध सिद्धों द्वारा 'बोद्ध गण ओ दोहा' लिखा गया गया, जिसे 'चर्यापद' के नाम से भी जाना जाता है, जातिविरोधी और ब्राह्मणविरोधी चेतना ओडिया समाज में निर्मित हुई है। हादीपा, कान्हूपा, तांतीपा, चौरंगीनाथ, गोरखनाथ, महेन्द्रनाथ तथा लुईपा 'चर्यापद' की रचना करने वाले नाथपंथी संतों में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने उड़ीसा में एक विशिट सामाजिक परम्परा की नींव डाली। इसके साथ ही 15 वीं शताब्दी के मध्य में एक पंथनिरपेक्ष सामाजिक-साहित्यिक आंदोलन भी देखा जा सकता है, जब सामाजिक असमानता के विरूद्ध एक सशक्त आंदोलन उठ खड़ा हुआ। इस आंदोलन का सूत्रपात शूद्र मुनि सरलदास ने किया था और पंचसखा के पाँच कवियों-बलरामदास, जगन्नाथ दास, अच्युतानन्द दास, जसोबन्तादास तथा अन्नतदास ने इस आंदोलन को एक और शताब्दी तक चलाया। 19वीं शताब्दी के भीम-भोई आंदोलन ने जारी प्रतिरोध को और अधिक मजबूत तथा खुला बनाया।

यह आन्दोलन एक सामाजिक प्रतिरोध के आंदोलन थे, जो स्वातंत्र्योत्तर काल में राजनीतिक आंदोलन के रूप में परिणत हो गए। इसका उद्देश्य दलितों के लिए सम्मान तथा गौरवपूर्ण जीवन जीने का अधिकार उपलब्ध कराना रहा है। यद्यपि ओडिसा दलित साहित्य को अभी भी एक मजबूत तथा ठोस आधार की तलाश है, लेकिन धीरे-धीरे ही सही यह एक निश्चित आकार ग्रहण कर रहा है। अतः इसे अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से देखने की आवश्यकता है।

अन्य स्थानों की भाँति उड़ीसा में भी जाति-प्रथा के दमन के कारण दलित आज भी पददलित और उत्पीड़ित जीवन जी रहे हैं। मुख्य रूप से ग्रामीण और अशिक्षित होने के कारण वे समाज के सर्वाधिक शोषित वर्ग बन गए हैं तथा हाशिए पर पड़े हुए हैं। इतने वर्षों के पश्चात् भी वे अमानवीय जीवन व्यतीत करने को मजबूर हैं तथा आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक गुलामी और राजनीतिक शक्तिहीनता के शिकार हैं।

उड़ीसा में दलितों द्वारा उच्च जाति के लोगों के विरुद्ध किसी प्रकार का उग्रवादी आंदोलन या विद्रोह नहीं करना उनके सामाजिक-आर्थिक प्रताड़ना को किसी भी रूप में कम नहीं करता है। यह केवल इस तथ्य को रेखांकित करता है कि उड़ीसा के दलित जातीय उत्पीड़न को चुपचाप सह रहे हैं। इसका एक कारण संभवतः उड़ीसा में दलितों के सामाजिक-आर्थिक जीवन के स्तर से हो सकता है, जो उस स्तर तक परिवर्तित नहीं हो पाया जिस रूप में अन्य जगहों, उदाहरण स्वरूप महाराष्ट्र के दलितों का हुआ। इतिहास

इसकी पुष्टि करता है कि कुछ जगहों पर असंगठित प्रतिरोध हुए लेकिन उन्हें तुरंत ही दबा दिया गया। वस्तुतः इन आंदोलनों के नेता प्रायः हिन्दुत्वादी शक्तियों के बीच से ही आए थे। यह एक महत्त्वपूर्ण रहा है जिससे कि सत्ताधारी वर्ग ने आम लोगों के बीच प्रचलित जगन्नाथ की व्यापक उपासना का प्रयोग दलितों की चेतना को बदलने में किया, जिसने उनके प्रतिरोध की तीक्ष्णता को कुन्द कर दिया।

शुद्रमुनि सरलादास (15वीं शताब्दी) मध्यकालीन उड़ीसा में हुए सामाजिक विरोध आंदोलन के अगुआ थे। सरलादास अपने तीन महत्त्वपूर्ण काव्य-ग्रंथों में लोगों की वास्तविक जिंदगी की परिस्थितियों से संबंधित निकट अतीत की घटनाओं तथा विविध सांसारिक विषयों को केंद्र में रखते हुए इन्होंने उसे जनसामान्य की भाषा में अभिव्यक्त किया। अतः यह उन दरबारी लेखकों तथा कवियों के प्रति एक प्रकार का विरोध था जिनके लेखन का माध्यम संस्कृत था, जो इस समय वर्चस्व तथा शक्ति की भाषा का प्रतीक था और जिसका अत्यधिक सरोकार राजसी चरित्र के साथ था।

सरलादास ने अपने लेखन से विरोध की जिस भावना को अभिव्यक्त किया, उसे पंचसखा के कवियों - बलरामदास, जगन्नाथदास ने अपने लेखन से और अधिक गहराई तथा तीक्ष्णता प्रदान की। इन कवियों ने एक शताब्दी (1450-1550) तक ओड़िसा साहित्य को प्रभावित किया। इन पांच कवियों ने एक स्वर में साहित्य में संस्कृत भाषा के वर्चस्व को अस्वीकार करते हुए लोकभाषा को अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में बढ़ावा दिया। इस प्रकार इन्होंने ओडिया साहित्य में सामान्य लोगों की ओडिया भाषा के प्रयोग में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वस्तुतः इन्होंने ओडिया साहित्य में अग्रणी माने जाने वाले सारलदास के मार्ग का अनुसरण किया तथा हिंदुओं की पवित्र पुस्तकों को जनसाधारण तक पहुँचने के लिए उन्हीं की भाषा का प्रयोग किया। बलरामदास रचित 'जगमोहन रामायण' और 'लक्ष्मी पुराण', जगन्नाथदास रचित 'ओडिया भागवत', अच्युतानन्ददास रचित 'हेतुदय भागवत' काव्य-ग्रंथ इस दिशा में महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

इन कवियों ने मंदिरों तथा मठों में व्याप्त जीवन संबधी कठोर अनुशासन और आचारनिष्ठा का भी विरोध किया एवं वाद-विवाद के दोहरे मानदंड से ऊपर उठने का प्रयास करते हुए धर्म को बौद्धिक शास्त्रार्थ तथा अनभिज्ञ लोगों के पूर्वग्रह के रूप तक सीमित कर दिया। इस प्रक्रिया में इन कवियों को काफी विरोध, आलोचना और कट्टरपंथियों के षड़यंत्र का सामना करना पड़ा, जिन्होंने शासक-वर्ग को इनके विरुद्ध भड़काया। शासक-वर्ग द्वारा कई दमनकारी कदम उठाने के बावजूद आंदोलन पूरी तरह सामाप्त नहीं किया जा सका, यद्यपि इसे आखिरकार प्रभुत्वसम्पन्न ब्राह्मणवादी तंत्र से समझौता करना पड़ा।

पंचसखा के कवियों के पश्चात् सामान्य लोगों के जीवन तथा भाषा को अभिव्यक्त करने वाले विरोधात्मक साहित्य लेखन की परम्परा अचानक सामप्त हो गई। साहित्य के प्रतिपाद्य और शैली दोनों में एक महत्त्वपूर्ण स्पष्टतः देखी जा सकती हैं। राजपरिवार के सदस्यों (उदाहरणस्वरूप, 18 वीं शताब्दी के धनंजय भंज और उपेन्द्र भंज) ने इस दिशा में अग्रणी भूमिका निभाई, जो प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के विषय-वस्तु, स्वरूप, अलंकृत शैली और प्रांजलता से भलीभाँति परिचित थे। इनका साहित्य लेखन अभिजातवर्गीय रहना स्वाभाविक ही था। इनके लेखन में किसी प्रकार के सुधार का कोई स्वर नहीं मिलता है। इस प्रकार का साहित्य गुणात्मक रूप में मूलतः भाग्यवादी था।

भीम भोई के आगमन के साथ ओडिया साहित्य में दलितों के द्वारा विरोध का दूसरा दौर प्रारंभ होता है, जो प्रारंभिक दौर से निश्चित रूप में भिन्न है। भीम भोई ने विशुद्ध धार्मिक विषय की प्रधानता वाले साहित्य के चंगुल से मुक्त कर विरोधात्मक साहित्य को एक बार

पुनः प्रतिष्ठापित किया। कोंध परिवार में जन्मा भोई महिमा धर्म का अनुयायी था। महिमा धर्म मूल निवासियों का एक धार्मिक आंदोलन था, जिसने 19 वीं शताब्दी में उड़ीसा में अपनी उपस्थिति दर्ज की। इसके ज्यादातर अनुयायी समाज के निम्नतम तथा उत्पीड़ित वर्ग के थे। स्तुति चिन्तामणि, श्रुतिनिषेध गीता और निर्वेद साधना भीम भोई के सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इसके अतिरिक्त भोई के कई महिमा भजन भी मिलते है, जिसकी भाषा इतनी सरल है कि अनपढ़ व्यक्ति भी उसे याद रख सकता है। अपने पूर्ववर्तियों की भाँति भोई ने भी ओडिया समाज में विद्यमान रुढ़िवादी कर्मकाण्डों, अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों पर कड़ा प्रहार किया। उनका साहित्य सामाजिक प्रतिमानों, चलन तथा व्यवहार को पुनर्व्याख्यायित करने तथा मान्यताओं की नवीन परिकल्पना का प्रयास करता है। उनका साहित्य गरीबों तथा उत्पीड़ितों के लिए एक बेहतर संसार की आशा करता है।

भोई महिमा धर्म के एक सक्रिय अनुयायी थे। उन्होंने जीवन जीन के वैकल्पिक मार्ग का प्रचार किया, जिससे महिमा धर्म के अनुयायियों के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन आए। यह कहा जाता है कि भीम भोई की प्रेरणा पाकर महिमा धर्म के कुछ अनुयायियों ने 1874 ई. में पुरी के जगन्नाथ मंदिर में देवताओं की मूर्ति को जलाने के लिए विरोध जुलूस निकाला। उनका मानना था कि भगवान जगन्नाथ राज्य के मूल निवासियों आदिवासी तथा निम्न जातियों के देवता हैं न कि ब्राह्मणों तथा उच्च वर्ण के इस प्रकार भोई के धार्मिक-साहित्यक चेतना ने नए रुप में प्रकट हो रहे सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में आरंभिक संगठन तथा आंदोलन को जन्म दिया।

वस्तुतः भोई के विचार तथा कार्यक्रम इस चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं कि हिंदू समाज की जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं ने अंदर तक जकड़ रखा है तथा जो स्वयं अपने समाज के सदस्यों को बिना किसी दोष के सताने और दबाने से नहीं झिझकता। लेकिन उड़ीसा में दलितों की विद्यमान अवस्था के कारण उनका संदेश विविध अभिव्यक्ति तथा संगठन के रूप में फलीभूत नहीं हो पाया। औपनिवेशिक शासन के दौरान भी एक लंबी अवधि तक उड़ीसा में दलितों को अन्य प्रदेश के लोगों की भाँति प्राथमिक शिक्षा का कोई लाभ नहीं मिला। 20 वीं शताब्दी के पहले दशक में जाकर ही कुछ दलित साक्षरता तथा शिक्षा के द्वारा सभ्य समाज के अंग बन पाए। हालाँकि, संरचनात्मक असमानता, धार्मिक असंतुलन तथा राजनैतिक छल के कारण उनके बीच शिक्षा का समुचित रूप से प्रसार नहीं हो सका। अन्य स्थानों के विपरीत उड़ीसा में दलितों के बीच शिक्षा क्षेत्र में मिशनरियों का आगमन काफी देर से हुआ।

20वीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक में जाकर उड़ीसा के दलितों ने,संगठित स्तर पर तो नहीं लेकिन व्यक्तिगत स्तर पर अवश्य अपनी रचनाओं के माध्यम से 'दलित साहित्य' का निर्माण किया। इस नवीन साहित्य के निर्माता गिनी-चुनी संख्या में ही हैं। इनमें से अधिकतर शिक्षक, वकील, डॉक्टर तथा अन्य सरकारी कर्मचारी हैं, ये एक ऐसे अग्रिम पंक्ति का निर्माण करते हैं, जो अत्यंत पिछड़े और विभाजित लोगों में बढ़ती चेतना का प्रतीक है। इन्होंने जिस साहित्यिक शैली का प्रयोग आरंभ किया है, वह अभि कविता, कहानी, नाटक तथा आलोचनात्मक निबंधों तक ही सीमित है। उपन्यास, आत्मकथा तथा अन्य प्रकार का साहित्य दुर्लभ है। इस संदर्भ में ओडिया दलित लेखक अभी अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराने में पीछे हैं। उन्होंने जिस साहित्य का निर्माण पिछले कुछ वर्षों में किया है, उसे अभी व्यापक पाठक वर्ग मिलना शेष है। लेकिन ओड़िसा दलित साहित्य के सम्यक अवलोकन से स्पष्ट है कि ये लेखक किसी भौगोलिक सीमा से बँधे हुए नहीं हैं। उनकी रचनाओं में विश्व के किसी भी क्षेत्र में अपनी स्वतंत्रता और अधिकार के लिए संघर्षरत मनुष्य का स्वर सुना जा सकता है।

यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है कि सामाजिक-सांस्कृतिक दुर्बलताओं के कारण

उड़ीसा के दलितों पर आंबेडकर की विचारधारा कोई गहरा प्रभाव नहीं डाल सका। इसने कुछ राजनैतिक हलचल अवश्य उत्पन्न की। लेकिन, कुल मिलाकार उड़ीसा के दलितों के मध्य यह किसी प्रकार की साहित्यिक जागरूकता उत्पन्न करने में विफल रहा। हालाँकि, इसी काल में हमें उच्चवर्गीय लेखकों द्वारा दलितों की जीवन-स्थिति से संबंधित कुछ रचनाएँ मिलती है, जो प्रायः राष्ट्रवादी विचारधारा के दायरे में लिपटी रही। इस प्रकार की अधिकांश रचनाओं में दलितों का चित्रण आलसी, झगड़ालू, शराबी, चोर, ठग आदि रूपों में हुआ है, जिनमें से कुछ नामों को लेकर आज भी दलितों को लांछित किया जाता है।

ओडिया में कहानियों की रचना करने वाले दलित लेखकों की संख्या अच्छी खासी है। इन कहानियों की विषय-वस्तु काफी विस्तृत और विविधता लिए हुए है। ये जातीय उत्पीड़न, आर्थिक शोषण, लैंगिक प्रताड़ना तथा अन्य प्रकार की सामाजिक समस्याओं से जुड़े हुए हैं। दलित-जीवन के अनुछुए पहलूओं तथा भावनाओं को इन लेखकों ने अभिव्यक्त किया है। हमने समीर रंजन सेठी की 'उम्मीद अब भी बाकी है' तथा संजय कुमार बाग की 'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' का चयन इसलिए किया क्योंकि दोनों ही कहानियाँ यह बताती है कि कैसे आधुनिक भारत में स्वतंत्रता के पचास वर्षों से अधिक समय के बाद भी दलित समुदाय समाज में अपनी निम्न स्थिति के कारण शिक्षा प्राप्त करने के संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार से वंचित है। शिक्षा मानव के व्यक्तित्व का निर्माण तो करता ही है, उसके चिन्तन ओर विभिन्न समस्याओं के प्रति उसकी अवधारणा को निश्चित करने में भी सहायक होता है। अतः शिक्षा से वंचित रखना दलितों को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने में बाधक है। ये दोनों ही कहानियाँ भारतीय जातीय समाज के दोहरेपन को सामने लाने का प्रयास करती है जो दलितों को सामाजिक न्याय दिलाने का वादा तो करती है, लेकिन इसे लागू करने वाली संस्थाएँ उच्च वर्ण के लोगों से संचालित होती है और वह व्यवस्थित रूप से उनके हितों के विरुद्ध कार्य करता है। अतः इन दोनों ही कहानियों में दलित अपनी स्वतंत्रता और मानवीय सम्मान को प्राप्त करने की तलाश में यद्यपि पराजित दृष्टिगत होते हैं, लेकिन वे अपनी स्थिति के प्रति जाग्रत भी दिखते हैं। अतएव वे अपने प्रति किए जा रह अन्याय का विरोध करने का प्रयास करते हैं। अतः ये दोनों कहानियाँ दलित-चेतना तथा दलित-प्रतिरोध को सही संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं।

10.4 ओडिया दलित कहानियों का प्रतिपाद्य और चरित्र चित्रण

'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' और 'उम्मीद अब भी बाकी है' इन दोनों कहानियों में एक चीज सामन्य है, वह यह कि दलितों को शिक्षा से वंचित रखा गया है। उदाहरण के लिए, 'उम्मीद अब भी बाकी है' कहानी में बाबा स्वप्न देखता है कि भविष्य में मुन्ना या तो आई.ए.एस. बनेगा या पुलिस ऑफिसर, लेकिन ऐसा होता नहीं है। प्रारंभ से ही जातिवादी समाज यह निश्चित करता है कि मुन्ना अपनी शिक्षा जारी नहीं रख पाए। अतः माइनिंग स्कूल से उसका नाम काट दिया जाता है। मुन्ना की माँ उसे गुरूकुल में प्रवेश दिलाने का प्रयास करती है, परन्तु ब्राह्मण शिक्षक कहता है कि गुरुकुल में मुन्ना जैसे दलित लड़के के लिए कोई स्थान नहीं है। अतः मुन्ना का शिक्षा पाने का सपना, जिससे कि वह भविष्य में सरकारी नौकरी पा सके, पूरा नहीं हो पाता है। शिक्षा के द्वारा एक सुन्दर भविष्य के निर्माण का मुन्ना का मार्ग बन्द हो जाता है तथा अन्य दलितों की भाँति वह भी अपने भविष्य के लिए चिन्तित होने के लिए विवश हो जाता है।

'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' में स्वतंत्रता के पचपन वर्षों के बाद भी शिक्षा से वंचित दलितों की समस्या को उठाया गया है। इस कहानी में वक्ता बताता है कि कैसे कई पीढ़ियों से, उसके दादा के समय से लेकर स्वयं उस तक, शिक्षा प्राप्त करना एक महंगा कार्य बन गया है। अन्य स्थानों की तरह उड़ीसा में भी दलितों को न केवल विद्यालय जाने से हतोत्साहित किया जाता है, बल्कि यदि वे विद्यालय जाने का प्रयास करते हैं तो उच्च जाति के शिक्षकों से मिलने वाले दुर्व्यवहार से उन्हें यह अहसास कराया जाता है कि शिक्षा उनके लिए अंतिम रास्ता है। वे यह समझते हैं कि शिक्षा उच्च जाति के लोगों के लिए ही उपयुक्त है। जैसा कि हम इस कहानी में देखते हैं कि केवल जातीय भेदभाव ही नहीं अपितु पतित पावन रथ जैसे शिक्षक भी दलित बच्चों को पढ़ाई-अधूरा छोड़ने के लिए मजबूर करने के दोषी हैं। पढ़ाई छोड़ने वाले ये दलित उच्च जाति के परिवारों के लिए कृषि-मजदूर और दिहाड़ी मजदूर बन जाते हैं। कहानी के अंत में, कथावाचक का पिता मधुबाबू की उस योजना को नहीं समझ पाता, जिसके अन्तर्गत मधुबाबू दलित बाल श्रमिकों के लिए पाठशाला स्थापित कर रहे हैं, जबकि दूसरी तरफ वह डैम, सड़क, मकान आदि बनाने के कई परियोजनाओं पर व्यस्त है। अतः यह कहानी दलितों को उच्च जाति के षडयंत्रों से सावधान करती है, जिसके तहत वह दलित उत्थान के नाम पर ठगा जा रहा है। यह कहानी दलितों को शिक्षित होने का आह्वान करता है, जिससे कि वह उच्च जाति के विद्वेषपूर्ण चालों को समझकर उनके विरुद्ध खड़ा हो सके।

'उम्मीद अब भी बाकी है' कहानी में दलित स्त्रियों का संघर्ष उभर कर सामने आता है। मुन्ना की माँ और पिंकी-दोनों चरित्र दलित स्त्री का प्रतिनिधित्व करने के साथ दो अलग पीढ़ियों का भी प्रतिनिधित्व करती हैं। माँ आर्थिक समस्याओं से जूझते अपने परिवार को बचाने तथा उनका पेट भरने के लिए एक पंजाबी ड्राइवर की रखैल बनने को मजबूर होती है। अपने पुत्र को शिक्षित बनाने की इच्छा लिए वह गुरूकुल जाती है, लेकिन वहाँ उसे उच्च वर्ण के आचार्य के जातीय उत्पीड़न और भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। दूसरी ओर पिंकी का चरित्र है जो मुन्ना से प्यार करती है ओर उससे शादी कर लेती है। फलस्वरूप थाने में उसे पुलिसिया जुल्म का शिकार होना पड़ता है, लेकिन वह समर्पण करने की जगह उनसे टकाराती है। अतः यह कहानी दलित स्त्रियों के साथ होने वाले उत्पीड़न, दुर्व्यवहार और यौन-शोषण जैसी समस्याओं को उठाती है। दलित स्त्रियों का जीवन पुरूषों की अपेक्षा कही अधिक संघर्षपूर्ण, कष्टमय और कठिनाई से परिपूर्ण है। एक ओर जहाँ उन्हें घरेलू जिम्मेदारियाँ संभालनी होती है, वहीं दूसरी ओर घर की आर्थिक स्थिति में योगदान करने के लिए भी हाथ बँटाना पड़ता है। जिसके लिए घर से बाहर काम के लिए निकलना पड़ता है। फलतः उन्हें कई प्रकार के शोषण का शिकार होना पड़ता है। दलित स्त्रियों के बीच शिक्षा का अभाव इस शोषण में वृद्धि ही करता है। यह कहानी दो पीढ़ियों की बदलती मानसिकता और सोच को भी रेखांकित करती है। माँ यद्यपि कुरुकुल के आचार्य की जातीय भेदभाव का प्रतिरोध करती है, लेकिन वह अपने परिवार को छोड़कर पंजाबी ड्राइवर की रखैल बनकर उसके साथ बाहर चले जाने को मजबूर होती है। वहीं पिंकी मुन्ना के साथ पुलिसिया जुल्म का विरोध करती है, वह अपने अधिकारों की बात करती है। यह परिवर्तन शिक्षा के कारण ही संभव हो पाता है। यद्यपि उसने तीसरी कक्षा तक ही शिक्षा प्राप्त की है। इस प्रकार मुन्ना की माँ तथा पिंकी के माध्यम से लेखन ने दलित महिलाओं के जीवन संघर्ष तथा समस्याओं को अभिव्यक्त किया जाता है।

'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' दलितों को शिक्षा से वंचित रखने के उच्चवर्गीय समाज के षड्यंत्रों और दोहरी मानसिकता को उजागर करती है। एक तरफ तो दलितों के उत्थान, शिक्षा प्रदान करने और बाल श्रमिक प्रथा को समाप्त करने की ऊँची-ऊँची बात

की जाती है, वहीं दूसरी तरफ सोची समझी चाल के तहत दलितों के लिए बाल श्रमिक पाठशाला खोली जाती है। इस पाठशाला में कहने के लिए तो दलित बच्चों के शिक्षा देने के योजना है, लेकिन इसका वास्तविक उद्देश्य है मधुबाबू के कारखानों के लिए कुशल कारीगरों का निर्माण करना है, न कि उनकी चिन्तन-शक्ति विकसित करना। शिक्षा मनुष्य के चिन्तन-क्षमता को विकसित करती है तथा इससे उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता भी उत्पन्न होती है। लेकिन एक षडयंत्र के तहत दलितों के लिए मधुबाबू बाल श्रमिक पाठशाला खोलते हैं, ताकि ये दलित भविष्य में उनके विरुद्ध आवाज न उठा पायें।

यह कहानी दलितों को शिक्षा से वंचित रखने की भेदभाव की नीतियों को रेखांकित करती है। विद्यालय में दलित बच्चों को अलग-अलग करने के लिए उन्हें सबसे पीछे बैठाया जाता है। डोम, घासी, चमार आदि जातिसूचक नाम लेकर उन्हें जातीय उत्पीड़न का शिकार बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त छोटी-से-छोटी गलती पर भी इन बच्चों की जमकर पिटाई की जाती है, जिससे उनके बाल अन्तर्मन में भय व्याप्त हो जाता है। कुल मिलाकर, दलित बच्चों के मस्तिष्क पर विद्यालय की एक ऐसी छाप अंकित कर दी जाती है, जिससे वह स्कूल जाने से डरता है और पढ़ाई बीच में ही छोड़ देता है। परिणामस्वरूप वह शिक्षा से वंचित रह जाता है। इन सबके पीछे एक सोची समझी सवर्ण मानसिकता कार्य करती है जिसके तहत दलितों को शिक्षा से वंचित रखकर उन्हें उनके मौलिक अधिकारों तथा समाज में बराबरी का दर्जा देने के अवसर से वंचित किया जाता है। अतः यह कहानी कई महत्त्वपूर्ण समस्याओं को सामने लाती है, जिसका सीधा संबंध शिक्षा से जुड़ा हुआ है।

केवल उच्च जाति के शिक्षक ही दलितों को शिक्षा से वंचित करने का प्रयास नहीं करते, अपितु नौकरशाही, पुलिस और अन्य सरकारी अधिकारी भी कैसे जातिगत आधार पर हमेशा दलितों का अहित करते हैं, इसे भी इन दोनों कहानियों में दिखाया गया है। 'उम्मीद अब भी बाकी है' कहानी में सम्पूर्ण पुलिस बल उच्च जाति का है, जो हिरासत में पिंकी के साथ दुर्व्यवहार करने की योजना बनाने से नहीं हिचकते। यह बताता है कि दलित स्त्रियाँ उच्च जाति के पुरुषों के द्वारा हमेशा यौन शोषण की वस्तु के रूप में देखी जाती है। मुन्ना की माँ भी इस प्रकार की स्थिति का सामना करती है, जब वह उच्च जाति के शिक्षक से गुरुकुल में मिलती है। पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध पिंकी द्वारा दृढ़तापूर्वक आवाज उठाना स्पष्ट करता है कि दलित स्त्रियों को अपनी आजादी की रक्षा के लिए स्वयं जागरूक होना होगा।

इन दोनों कहानियों के पात्र अत्यंत सामान्य किस्म के लोग हैं, जिन्हें दैनिक जीवन की छोटी-छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करना पड़ता है तथा जिन्हें एक अच्छे भविष्य की तलाश है। ये लोग एक ऐसे जातिविहीन समाज की आशा करते हैं, जहाँ उनके अस्मिता का सम्मान हो तथा उच्चवर्गीय समाज द्वारा समानता का व्यवहार हो। अतः इन दोनों कहानियों के लेखन का स्वप्न है-सामाजिक परिवर्तन और समानता पर आधारित सामाज की स्थापना। यह उद्देश्य वस्तुतः दलित साहित्य का मुख्य विचार-बिन्दु है।

10.5 सारांश

'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' में भारत की आजादी के पचपन वर्षों के बाद भी शिक्षा से वंचित दलितों की समस्या को उठाया गया है। मधुबाबू कहानी में एक प्रतीकात्मक पात्र है। वह उच्चवर्ग के उन शिक्षित लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो ऊपर से तो दलितों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं, उनके उत्पीड़न की बात करते हैं, लेकिन यथार्थ में अपने निजी फायदे के लिए उनका शोषण करने से नहीं चूकते। मधुबाबू एक महान् व्यक्तित्व थे। लंदन से बास-एट-लॉ की उपाधि ग्रहण करने वाले वे प्रथम ओडिया थे तथा

उन्होंने भारत के स्वतंत्रता-आंदोलन में भाग लिया था। आज भी उड़ीसा के शिक्षित-अशिक्षित सभी लोग उन्हें एक महान् जीवट वाले साहसी व्यक्ति के रूप में याद करते हैं। किसी भी ओडिया बच्चे को प्रारंभ से ही मधुबाबू के समान या उनसे भी आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस कहानी में भी वक्ता के पिता, चाचा तथा समाज के अन्य लोग अशिक्षित होते हुए भी अपने बच्चों को मधुबाबू के समान उच्च शिक्षित बनने की याद दिलाते हैं।

लेकिन कहानी इतनी सरल नहीं है। इसमें यह दर्शाया गया है कि कैसे विद्यालयों में दलितों के साथ गलत व्यवहार किया जाता है। यदि वक्ता के पिता और चाचा शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाते हैं, तो इसका एकमात्र कारण शिक्षकों का दुर्व्यवहार है जो प्रायः ब्राह्मण समुदाय के हैं तथा वे सामाजिक-शैक्षणिक संस्थाओं को निजी लाभ के लिए अपनी पकड़ में रखते हैं। आज जब सरकार सभी को, जिसमें दलित भी शामिल है, शिक्षा प्रदान करना चाहती है, तो कई लोगों को यह पैसे की बर्बादी प्रतीत होता है क्योंकि हमारा जाति आधारित सामाजिक ढाँचा, विशेषकर गाँवों में, अभी तक नहीं बदला है। कहानी स्पष्ट रूप से बताती है कि कैसे विद्यालयों में छुआछूत की भावना विद्यमान है। अगर शिक्षक ही विद्यालयों में छुआछूत की भावना रखेंगे, तब कई अन्य सामाजिक समस्याओं को समाप्त करना काफी मुश्किल है। अतः सभी को शिक्षा जैसे कार्यक्रम वक्ता की नजर में मात्र एक नारा बनकर रह गए हैं। कहानी के अंत में, वक्ता के अशिक्षित पिता यह नहीं समझ पाते हैं कि मधुबाबू बाल श्रमिकों के लिए, जो ज्यादातर दलित समुदाय के हैं, विद्यालय की स्थापना क्यों कर रहे हैं; जबकि वह मकान, सड़क, डैम आदि बनाने में लगे हुए हैं जहाँ काम करने के लिए बाल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। अतः कहानी एक सामाजिक व्यंग्य है। यह उच्च वर्ण के लोगों की कुटिलता तथा दोहरेपन को सामने लाती है, जो निजी लाभ के लिए दलितों को शिक्षा-संस्थानों से इस उम्मीद में दूर रखते हैं कि वे जब तक गरीब, जरूरतमंद और अशिक्षित रहेंगे उनके लिए लाभप्रद बने रहेंगे।

'उम्मीद अब भी बाकी है' में यह बताया गया है कि किस प्रकार तथाकथित उच्च जाति के लोगों के द्वारा दलित लगातार विभिन्न जातीय भेदभाव और उत्पीड़न के शिकार रहे हैं। इसमें यह भी बताया गया है कि दिन-रात के परिश्रम के बावजूद भी वे अपनी आजीविका किसी प्रकार चला पाते हैं अथवा शिक्षा प्राप्त कर पाते है, जिससे जाति आधारित समाज द्वारा उन्हें वंचित करने का प्रयास किया जाता है। इस कहानी में मुन्ना का पिता, बाबा अपने तथा अपने समुदाय के लोगों के लिए एक बेहतर भविष्य का स्वप्न देखता है। वह हाड़ी समुदाय का है, जिसका पारम्परिक कार्य है - शौचालय तथा सड़कों की सफाई। हालाँकि, बाबा एक अपवाद है क्योंकि वह पारंपरिक कार्य करने के बदले खदान में काम करता है। मुन्ना खदान के स्कूल में दाखिल होता है। बाबा स्वप्न देखता है कि अच्छी शिक्षा प्राप्त कर मुन्ना आई.ए.एस या पुलिस विभाग में अफसर बनेगा तथा जरूरतमंदों की सहायता करेगा और गरीबों को सामाजिक न्याय दिलाने में मदद करेगा। लेकिन माइनिंग कार्यालय के कम्प्यूटरीकृत होने के बाद जब कई अन्य लोगों के साथ बाबा को नौकरी से निकाल दिया जाता है, तो सुनहरे भविष्य का यह स्पप्न भी भंग हो जाता है। बाबा इस अन्याय से लड़ने के लिए मजदूरों को एकजुट करने का प्रयास करता है। लेकिन प्रबंधकों द्वारा कुछ मजदूरों को रिश्वत देकर यह आंदोलन तुरन्त समाप्त करवा दिया जाता है और बाबा अपनी लड़ाई में अकेला रह जाता है। प्रबंधन द्वारा स्कूल से मुन्ना का नाम भी काट दिया जाता है। मुन्ना की माँ निकट के गुरुकुल में उसका नाम लिखवाने का प्रयास करती है, जिससे कि मुन्ना अपनी पढ़ाई जारी रख सके। किंतु ब्राह्मण शिक्षक अपने विद्यालय में एक अस्पृश्य को पढ़ने की अनुमति नहीं देता। शिक्षक जाति का नाम लेकर मुन्ना की माँ को अपमानित करता है। अतः मुन्ना का भविष्य अंधकारमय हो जाता है।

नौकरी छूटने के बाद बाबा के पास अपने परिवार का पालन-पोषण करने के लिए आय का कोई निश्चित स्रोत नहीं होता है। कुछ कमाने के प्रयास में बाबा चोरी करना प्रारंभ कर देता है। वह अपने साथ मुन्ना को भी ले जाता है और उसे भी अपना अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति नहीं सुधरती, बल्कि यह दिनोंदिन बदतर होती जाती है। यहाँ तक कि माँ के पास फटी-पुरानी एकमात्र साड़ी बच जाती है, जिससे वह किसी तरह काम चलाने का प्रयास करती है। वह नगर निगम के शौचालय में नहाने के लिए जाती है और कई दिनों पर अपनी साड़ी धोती है। एक बार जब वह अपनी फटी-पुरानी साड़ी पहनकर बैठी रहती है, तभी एक पंजाबी ड्राइवर की रखैल बन जाती है। यद्यपि माँ अपना शरीर पंजाबी ड्राइवर को सौंप देती है, लेकिन वह अब भी बाबा और मुन्ना से प्यार करती है। इसका पता इस बात से चलता है कि वह बीच-बीच में खाना और पैसा लेकर अपने पति और पुत्र को सौंप देती है। जब ड्राइवर को इस चालाकी का पता चलता है, तब वह उसे लेकर दिल्ली चला जाता है।

इसी बीच मुन्ना छोटा-मोटा काम करने लगता है। वह एक आर्केस्ट्रा ग्रुप में बाँसुरी बजाता है। चाय-बीड़ी के दुकानदार रघु की बेटी पिंकी से वह प्यार करने लगता है। पिंकी भी मुन्ना को चाहने लगती है और उसका ख्याल रखती है। वह मुन्ना को हमेशा परिस्थितियों का दृढ़तापूर्वक मुकाबला करने के लिए प्रोत्साहित करती है। एक दिन पिंकी अपना घर छोड़कर मुन्ना के साथ रहने लगती है। मुन्ना के आर्केस्ट्रा ग्रुप का साथी शादी करने में उनकी मदद करता है। लेकिन एक नाबालिग लड़की के साथ शादी करने के जुर्म में पुलिस मुन्ना को पकड़ लेती है। मुन्ना और पिंकी को हिरासत में लेकर प्रताड़ित किया जाता है, लेकिन वे दृढ़ता से उसका सामना करते हैं। पिंकी उन्हें बताती है कि वह उन्नीस वर्ष की हो चुकी है तथा अपने स्कूल के सर्टिफिकेट से इसकी जाँच कर लेने की सलाह देती है। लेकिन पिंकी इस प्रयास का प्रतिरोध करती है और पुलिस को करारा जबाव देती है। पिंकी को पुलिस के जुल्म से बचाने के लिए मुन्ना हिरासत के रेलिंग की एक छड़ तोड़कर थाना बाबू के सिर पर जोर से प्रहार करता है। कहानी के अंत में पिंकी बच जाती है और मुन्ना तथा पिंकी एवं उनके जैसे कई अन्य दलित, जो सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष कर रहे हैं, की जीत होती है। अतः कहानी में एक निश्चित सामाजिक सोच है।

इकाई 11 'गाँव का कुआँ' और 'परती जमीन'

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 कोलाकलूरी इनाक : जीवन परिचय और रचना संसार

11.3 गाँव का कुआँ : सवर्ण उत्पीड़न की लोमहर्षक दास्तान

11.3.1 वहशी मुखिया के अमानवीय कृत्य

11.4.2 सुविधा प्राप्त अवसरवादी : उत्पीड़न सहायक

11.3.3 मनुष्यता के कुछ प्रसंग

11.4 चिदंबरमः नयी चेतना का वाहक

11.4.1 विद्रोही चिदंबरम

11.4.2 समग्र मनुष्य

11.5 चिदंबरम की स्त्री : परंपरा की राह में प्रतिशोध की इबारत

11.6 चिदंबरम बनाम मोतीः परंपरा का अनुभव और भविष्य दृष्टि का सवाल

11.7 गाँव का कुआँ : भाषा और शिल्प

11.8 रचनाकार बोया जंगय्या : जीवन और कर्म

11.9 परती जमीन : मूल वस्तु और संवेदना

11.10 आर्थिक शोषण का जाति परक ढाँचा

11.11 परती जमीन और धार्मिक ताना-बाना

11.12 परती जमीन : भाषा और शिल्प

11.13 सारांश

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप प्रसिद्ध तेलुगु कहानीकार कोलाकलूरी इनाक की कहानी 'गाँव का कुआँ' तथा बोया जंगय्या की कहानी 'परती जमीन' का अध्ययन करेंगे। ये कहानियाँ अत्यंत प्रभावी ढंग से भारतीय गाँवों के सवर्ण वर्चस्ववादी तबके के असली चेहरे को बेनकाब करती हैं। यह वही तबका है जो भारतीय परंपरा और संस्कृति की प्रशंसा करते नहीं अघाता है। मनुष्यता की विरूदावली गाने वाले इसी तबके ने बेगार, अस्पृश्यता, अवर्ण स्त्रियों के बलात्कार जैसे अनेक मानव विरोधी कृत्य किए हैं। ये कहानियाँ इसी तरह के कुछ लोमहर्षक दृश्यों का आख्यान करती हैं। पुनर्जन्म, मोक्ष, पूर्व जन्म का पाप, प्रारब्ध का निर्णय जैसी कुहेलिकाओं में उलझाने वाले इस समूह की अमानवीयताओं से पढ़ा लिखा तबका अब बखूबी परिचित होने लगा है। दोनों ही कहानियों में हम 'चिदंबरम' और 'राजि का बेटा-गोपाल' के रूप में दलित चेतना को उभरते हुए देख सकते हैं। हिन्दू धर्म और नीति में दलित दमन के आधार और इसकी क्रिया प्रणाली को लिपिबद्ध किया गया है।

दलित परंपरा ने समय-समय पर इनके ऊपर कठोर प्रहार किए हैं। भक्ति काल में रैदास और कबीर की वाणियाँ इसका उदाहरण हैं। इसके बावजूद उत्पीड़न की अमानवीय परंपराओं का अंत नहीं हुआ।

आधुनिक काल में ब्रितानी हूकूमत के दौरान ज्योतिबा फूले और बाद में बाबासाहब आम्बेडकर ने दलित चेतना को राजनैतिक विवेक से संपन्न किया। इन तेलुगु कहानियों में चिदंबरम और गोपाल जैसे नए दलित युवक इसी चेतना को अपने संघर्ष का साधन बनाते हैं। इन कहानियों के माध्यम से तेलुगु दलित जीवन की चेतना और इसके परिणामों को जानने-समझने का प्रयास करेंगें। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

- तेलुगु समाज में वर्चस्व की बनावट और दलित सरोकार को समझ सकेंगे;
- तेलुगु समाज में दलित चेतना के उदय को पहचान सकेंगे;
- तेलुगु दलित कहानियों में अभिव्यक्त दलित स्वर की विशिष्टता को रेखांकित कर सकेंगे; और
- तेलुगु दलित कहानियों में भाषा और शिल्प की अलग भंगिमा को स्पष्ट कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

हिन्दू धर्म में समाज की बनावट और कार्य प्रणाली, वर्ण और जाति व्यवस्था की रचना पर आधारित है। यहाँ तक कि उत्पादन का रूप भी बहुत समय तक जाति की जजमानी प्रथा से ही बंधा रहा। इस व्यवस्था में ज्ञानशास्त्रीय मीमांसा और श्रम परंपरा में गहरी फाँक रही है। जो ज्ञान से संबंद्ध रहा, उसके लिए शारीरिक काम करना अधम कोटि का था। ठीक उसी तरह जो उत्पादनकर्ता और शिल्पी वर्ग था उसके कार्य को घृणा से देखने की संस्कृति स्थापित की गई। मसलन ब्राह्मण ज्ञानार्जन करने और उसके विस्तार का कार्य करता था, पर शिल्प के कार्यों को तथा जूता बनाने के कार्य अथवा औजारों के निर्माण जैसे कार्यों से सदा दूर रहा। जो शारीरिक श्रम से जुडा उसकी सामाजिक दशा निम्न दर्जे की बना दी गई। दलित दृष्टि इस अमानवीय व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। दलित दृष्टि का विस्तार अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों में हुआ है। कथा संसार में दलित हस्तक्षेप मौजूदा समय की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति है। तेलुगु कहानी 'गाँव का कुआँ' तथा 'परती जमीन' का पाठ हम इसी संदर्भ में कर सकते हैं। पहली का कथानक गाँव के कुएं और दूसरी का कथानक परती जमीन से जुडा हुआ है। कहना न होगा कि इन कहानियों में सवर्ण दर्प और दलित उत्पीड़न को इस तरह से पिरोया गया है कि भेदभाव रहित समाज व्यवस्था के बहुप्रतीक्षित लक्ष्य को एक आकार प्राप्त होता है। कथाविन्यास का एक पहलू हमें खास तौर पर प्रभावित करता है, वह यह है कि सामंती उत्पीड़न के आगे जहाँ पुरानी पीढ़ी लगभग समर्पण करने की दशा में है वही नई पीढ़ी इसके आगे बगावत करती है। 'गाँव का कुआँ' कहानी में चिदंबरम की पत्नी को हम इस रूप में पाते हैं। वह अपने अपमान के प्रतिशोध लेने का निर्णय लेती है। वही 'परती जमीन' में राजि का बेटा- गोपाल, अपने समाज के लिए जमीन के स्वामित्व को हासिल करने का प्रयास करता है। इसी से संघर्ष का आरंभ होता है। इन दोनों कहानियों का क्रमवार विवेचन हम आगे करेंगे।

11.2 कोलाकलूरी इनाक : जीवन परिचय और रचना संसार

कोलाकलूरी इनाक का जन्म 1 जुलाई 1939 को आंध्र प्रदेश के गुंटूर जिले के विजिंडेला गाँव के एक दलित परिवार में हुआ था। पिता रमैरूया और माता विशरानथम्मा के लालन

पालन से बालक शिक्षा की ओर लगनशील बन गया। अपनी जिंदगी में उबरने के लिए बालक ने संघर्ष आरंभ किया। आश्चर्य नहीं है कि कोलाकलूरी ने मात्र 19 वर्ष की अवस्था में ए.सी. कॉलेज, गुंटूर में शिक्षक का पद प्राप्त किया। वे इस शैक्षिक जगत में अध्यापन की सीढ़ियाँ पार करते हुए एक दिन वाइस चांसलर के पद पर आसीन हुए। अकादमिक संसार में उनका नाम ऐसे व्यक्ति के रूप में लिया जाता है, जिसने यू.जी.सी, यू.पी.एस.सी और अनेक शोध संस्थाओं में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

रचनात्मक लेखन के क्षेत्र में कोलाकलूरी इनाक का योगदान सराहनीय है। उनका साहित्यिक सक्रियता का दायरा लगभग 60 साल तक फैला है जिसमें लगभग 81 पुस्तकें प्रकाशित हैं। कविता, नाटक, आलोचना, उपन्यास, निबंध, लघु कहानी और अनुवाद आदि सभी विधाओं में उन्होंने अपनी रचनात्मकता का प्रदर्शन किया है। अब तक उनके नौ उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, उनमें से पहले कई तेलुगु पत्रिकाओं में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुए हैं। उनके नाटकों में से कुछ ने तेलुगू विश्वविद्यालय और साहित्य अकादमी, हैदराबाद का पुरस्कार जीता। एक लघु कहानी लेखक के रूप में, उन्होंने छोटी कहानियों के ग्यारह संग्रह प्रकाशित किए हैं, उनकी छोटी कहानियों का अंग्रेजी, हिंदी, कन्नड़ और तमिल में अनुवाद किया गया है। कविताओं के बारह संग्रह प्रकाशित किए गए, उनकी कुछ ख्यातिपरक रचनाएँ निम्न हैं-

प्रकाशित पुस्तकें

काव्य

1. आशा ज्योति
2. कुलम धनम
3. चेप्पलू
4. वायस आफ साइलेंस
5. आदि आँध्ररू
6. निशब्द स्वरम
7. स्त्री दर्शनम

उपन्यास

1. समथा
2. सौदर्यावती
3. सौभाग्यवती
4. अनंत जीवनम
5. माँझी मनी
6. काला मेघालू

नाटक

1. कुंजी
2. हिंद जय
3. द फिफ्थ स्टेट
4. साक्षी

कहानियाँ

1. भवानी (संग्रह)
2. इडा जीविथम (संग्रह)
3. अस्पृश्य गंगा (संग्रह)
4. स्त्री दर्शनम (संग्रह)

11.3 गाँव का कुआँ : सवर्ण उत्पीड़न की लोमहर्षक दास्तान

'गाँव का कुआँ' कहानी में सवर्ण उत्पीड़न के उन अनेक लोमहर्षक दृश्यों का बखूबी वर्णन किया गया है, जिनसे भारत का लोकतान्त्रिक मिजाज रोज़ाना लहुलूहान होता है। ज़ाहिर है उसका सारा खामियाजा उन अवर्ण लोगों को सहना पड़ता है, जिन्हें लगातार श्रम करने के बावजूद उत्पादन की समस्त उपलब्धियों से वंचित किया जाता है। इस कहानी में दो चमारों रामू और चिदम्बरम (पिता-पुत्र) तथा चिदम्बरम की पत्नी के माध्यम से दलित उत्पीड़न को रूपायित किया गया है। रामू का परिवार चमार जाति का है। हरिजन बस्ती और चमार बस्ती की बसावट गाँव के सर्वाधिक ऊसर बस्ती में है। उसकी शुष्कता का अंदाज़ा इससे लगाया जा सकता है कि वहाँ का एकमात्र कुआँ अर्से पहले सूख चुका था।

अब जो गाँव के बचे कुएँ थे उनपर सवर्ण बस्ती के लोगों का कब्जा था। लिहाजा दलितों को पानी के लिए सवर्णों की रहम पर निर्भर रहना पड़ता था। इतना ही नहीं दलितों को खुद पानी भरने की इजाज़त नहीं थी। कुएँ के पास जाकर भी दलितों को पानी तब तक नहीं मिलता था, जब तक कोई सवर्ण आकर दलितों के पात्र में दूर से ही पानी न डाल दे। गाँव में दलितों को मंदिर प्रवेश का अधिकार नहीं था। जब सवर्ण और दलित दोनों पास हों तो, दलितों को बराबर बैठने का अधिकार नहीं था। चिदंबरम और उसकी पत्नी का तथाकथित दोष यही था कि उन दोनों ने इन रूढ़ियों को पश्नबिद्ध किया। प्रतिरोध के इस सिलसिले में चिदंबरम की पत्नी अपने पति से भी आगे हैं। इसका खामियाजा उन्हें भुगतना पड़ा। वे सवर्णों की आँख में खटकने लगे। सवर्ण इस ताक में रहने लगे कि किसी तरह इन लोगों को मज़ा चखाया जाय। जब नांचरय्या का बैल मर गया और मरे हुए बैल का धड़ कुएँ में पाया गया, तब सवर्ण लोगों को वह अवसर हाथ लगा, जिनकी तलाश वे अर्से से कर रहे थे। अवसर आसानी से इसलिए मिल गया, क्योंकि रामू किसान के द्वारा ही नांचरय्या की खेती संपन्न की जाती थी। मुखिया ने चिदंबरम और उसके पिता को खंभे से बंधवा दिया तथा छड़ी से बेतहाशा पिटाई शुरू की गयी। यानी यातनाओं की लोमहर्षक दास्तान शुरू हुई। कहना न होगा दिल दहला देने वाली यह घटना किसी बीमार समाज की ही बात हो सकती थी। सवर्ण उत्पीड़न की यह लोमहर्षक दास्तान जहाँ दलित बस्ती और संवेदनशील सवर्ण के लिए बेहद तकलीफदेह थी, वहीं उन सवर्णों के लिए यह सबक सीखाने का बहुप्रतीक्षित अवसर था जिनके लिए दलितों का जीवन महज सेवा करने का पर्याप्त था।

11.3.1 वहशी मुखिया के अमानवीय कृत्य

'गाँव का कुआँ' कहानी में सवर्ण उत्पीड़न का कर्ता-धर्ता मुखिया है। क्रूर मुखिया की अमानवीयता को कथाकार कोलाकलूरी इनाक ने बखूबी चित्रित किया है। मुखिया की सामंती ठसक को यह गंवारा नहीं है कि हरिजन और चमार बस्ती का कोई आदमी स्वाभिमानपूर्वक जीवन जीते हुए संविधान प्रदत्त लोकतान्त्रिक अधिकारों के साथ रहे। लेकिन कानून की पढ़ाई किए हुए चिदंबरम को यह अच्छी तरह मालूम है कि किसी भी मनुष्य को मानवोचित अधिकारों के साथ जीने का हक है। उसकी पत्नी भी अपने अधिकारों के प्रति सजग है और अपने प्रति किये गये किसी भी अत्याचार का मुँहतोड़ जवाब देती है। ऐसी परिस्थिति में चिदंबरम, पिता मोती और चिदंबरम की पत्नी के प्रति मुखिया के मन में सबक सिखाने की भावना का घर कर जाना स्वाभाविक था। भारतीय गाँव छुआछूत और जातीय उत्पीड़न के सबसे ज्वलंत उदाहरण हैं। मुखिया के वहशी कृत्य के आईने में यह बात और साफ़ तरीके से समझ में आती है। जब नांचरय्या के मरे हुए बैल का खाल उतरा धड़ कुएँ में पाया गया तो जैसे मुखिया को मुँहमाँगी मुराद मिल गयी। कारिंदे भेजकर पहले मोती फिर चिदंबरम को बुलाया गया। उन्हें बिना किसी प्रमाण के कृत्य का दोषी ठहरा खंभे से बाँध दिया गया। जब चिदंबरम ने पिता को खंभे से बाँधे और पीटे जाने का प्रतिवाद किया तब मुखिया पर जैसे पागलपन सवार हो गया। चिदंबरम ने कहा कि बापू तुम इजाज़त दे दो मैं मुखिया को मार डालूँगा। इस पर मुखिया ने क्रोध से फुँफकारते हुए डंडे से चिदंबरम के सिर पर वार किया और वहशियाना तरीके से चाबुक एवं डंडे से तब तक पिटवाया गया, जब तक चिदंबरम और पिता मोती बेहोश होकर गिर न गये। कहानीकार ने लिखा है, 'मन्दिर के भगवान के सामने फूटे नारियल की तरह चिदंबरम का सिर फट गया।' दरअसल मुखिया के इस कृत्य की पृष्ठभूमि उसी समय बन गयी थी जब मनवांछित लड़की से शादी होने की मनौती पूरा होने पर चिदंबरम ने गाँव की तथाकथित परंपरा को धता बताया। एक पुलिस अधिकारी की सहायता से दलित होने के बावजूद चिदंबरम ने मंदिर प्रवेश कर अपनी मनौती पूरी की। यह अलग बात है कि मुखिया

समेत अन्य सवर्णों ने चिदंबरम के मंदिर प्रवेश को रोकने की जी जान से कोशिश की। एक और घटना ने मुखिया की घृणा में इजाफा किया। रेलवे स्टेशन पर सवर्णों की अनदेखी कर चिदंबरम अपनी पत्नी के साथ बैंच पर बैठा रहा। उसने परंपरा अनुसार स्वयं उठकर सवर्णों को आसन ग्रहण करने का प्रस्ताव नहीं दिया। दलितों के लिए यह घटना बेहद तकलीफदेह थी। इस लोमहर्षक घटना के कारण चिदंबरम की पत्नी गहरे अवसाद से ग्रस्त हो गयी। उसने घर में चूल्हा तक नहीं जलाया। वहशी मुखिया ने चिदंबरम और रामू को ही नहीं पूरी बस्ती को चोर कह अपमानित किया। गाँव में इस तरह के अनेक अपमानजनक परिस्थितियों के कर्ता-धर्ता मुखिया और उसके कारिन्दे ही हैं। पर वही मुखिया जब चिदंबरम को मारता है, और चिदंबरम का सिर बुरी तरह फट जाता है, तब उसे अपने कृत्य पर पछतावा होता है और उसमें बदलाव आता है।

11.3.2 सुविधा प्राप्त अवसरवादी : उत्पीड़न सहायक

गाँव के यथास्थितिवाद से जिन लोगों को फायदा पहुँचता था, वे चाहते थे कि बदलाव की कोई बयार न बहे। ऐसे में चिदंबरम के प्रतिरोधी तेवर की मौजूदगी से यथास्थितिवादी खासे परेशान थे। उनकी मंशा थी कि चिदंबरम समेत दलित बस्ती के लोगों को इस कदर लांछित-प्रताड़ित किया जाय कि उनके पास सवर्णों की सेवा के सिवाय अन्य कोई विकल्प न बचे। गाँव में ऐसे चरित्रों की भरमार थी। पर यह देख कर और भी दुख होता है कि इस प्रक्रिया में वह तबका भी शामिल हो जाता है जो सरकारी मुलाजिम है। भारतीय संविधान की धज्जियाँ उड़ाने में दलित विरोधी सोच के साथ सक्रिय सवर्णों के साथ वे लोग भी शामिल होते हैं, जिन पर प्रशासनिक नुमाइंदगी के साथ संवैधानिक चेतना पहुँचाने की ज़िम्मेदारी थी। कथा में एक समय ऐसा भी आता है जब मुखिया को अपने किए की आत्मग्लानि होती है,साथ ही गाँव वालों को भी ऐसा लगता है कि चिदंबरम और मोती के साथ ज्यादती हुई है। ऐसे समय में भी गाँव का बुजुर्ग पटवारी एक अर्थ में दलित बस्ती के लोगों के मनोबल को तोड़ अपने मन के मुताबिक इस्तेमाल करने की साजिश रचता है। कथाकार ने इस पूरे घटनाक्रम को इस प्रकार चित्रित किया है - 'गाँव के बुजुर्ग पटवारी के पास गये। अब की वे कुछ करने पर विचार कर रहे थे। कल सुबह तक घटी घटनाओं का आकलन किया गया था। यह काम किसी एक का नहीं, बल्कि पूरी बस्ती का काम, इसलिए अब उस कुएँ की बात छोड़कर हरिजन बस्ती की बात सोचनी चाहिए। वे लोग हद से ज्यादा बढ़ रहे हैं, आज यह हुआ, कल क्या होगा, कौन जाने?' सुविधा प्राप्त अवसरवादियों की इस तरह की सोच के कारण वे कभी उत्पीड़न के कारक होते हैं तो कभी सहायक।

11.3.3 मनुष्यता के कुछ प्रसंग

'गाँव का कुआँ' कहानी अन्य दलित कहानियों से अलग किसी सरलीकृत निकर्ष पर पहुँचने की जल्दबाज़ी का शिकार नहीं होती। कहानी सारे सवर्णों को खलपात्र नहीं मानती। कहानी के दो सवर्ण पात्र इस रूप में याद किये जा सकते हैं जिनकी सवर्णचेतना पर मनुष्यता के संकल्प की जीत होती है। सत्यनारायण और नांचरय्या ऐसे ही सवर्णपात्र हैं। उनमें भी सत्यनारायण की चेतना इस कदर विकसित है कि वह मुखिया के जुल्म के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करवाने तक की धमकी तक दे डालता है। सत्यनारायण ने शहर में वकालत की डिग्री हासिल की थी। वह गाँधीवादी था तथा स्वराज्य की माँग के सिलसिले में जेल भी जा चुका था। जब चिदंबरम ने सवर्णों के लिए स्टेशन की सार्वजनिक बेंच से उठने के लिए मना कर दिया, तब सत्यनारायण ने इस निर्णय के लिए न सिर्फ चिदंबरम की तारीफ की, बल्कि इसे बेहद ज़रूरी कदम भी बताया। बकौल सत्यनारायण, 'अभ्युदय-अभ्युदय कहकर कौओं जैसा चिल्लाने से अभ्युदय नहीं आएगा। परिवर्तन नहीं आएगा। वह

कमाने से ही आएगा। हम लोग आज़ादी के लिए चिल्लाये, पर आखिर वह प्रयत्नों से ही मिली। कोशिश करने से ही मिली। कोशिश करने से ही अस्पृश्यता की बीमारी खत्म होगी। चिल्लाने से, दीवार खराब करने से, बाज़ारों में पैसा बाँटने से बीमारी खत्म नहीं होगी। दीवार पर बैठी बिल्ली के समान कारण बताने से कोई काम नहीं चलता। तुम लोग यदि प्रयत्न नहीं करोगे तो कुछ नहीं कर पाओगे। समानता देनेवाली चीज़ नहीं है। लेनेवाली चीज़ हैं। तुम लोगों में यह विश्वास नहीं जमेगा कि हम औरों के समान हैं, तो कम्बल, जहाँ हैं, वहीं रहेगा। मैं तेरे किए कामों के लिए दाद देता हूँ। हरिजन बस्ती गाँव के लिए दोनों हाथ के समान है। हाथों को काटकर कोई काम नहीं कर सकता। हरिजनों को दूर रखकर गाँव ही नहीं, सारा देश अपना प्रयोजन प्राप्त कर नहीं पा रहा है। इस देश में यह छुआछूत की बीमारी फैली हुई है। यह देश के रक्त में प्रवाहित होकर विनाश की ओर देश को ले जा रही है। यह बीमारी कब दूर होगी? कब चंगे शरीर से मज़बूत हाथ मिलेंगे? कब देश विकास की गति की ओर अग्रसर होगा?' कहना न होगा सत्यनारायण वर्गीय चेतना से बाहर यानी डिक्लास होने का जोखिम उठाता है। मंदिर प्रवेश और अन्य अनेक मौके पर सत्यनारायण के तेवर की धारदार मौजूदगी मनुष्यता के विभिन्न प्रसंगों का आख्यान करता है। नांचरय्या भी एक ऐसा ही सवर्ण पात्र है। लेकिन उसकी असहमतियाँ उस तरह से मुखर नहीं हैं, जैसी सत्यनारायण की। वह मुखिया द्वारा चिदंबरम पर किये जा रहे अत्याचार के प्रति असहमति तो जताता है, लेकिन मुखर विरोध करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। लेकिन उसका विरोध गौरतलब है।

11.4 चिदंबरम : नयी चेतना का वाहक

कथानायक चिदंबरम बनती हुई दलित चेतना का प्रतीक है। यह दलित अपने लोकतान्त्रिक अधिकारों से परिचित है। वह शक्तिशाली है। वह खेती के काम में कई व्यक्तियों का काम अपने दम पर करता है। बकौल लेखक चिदंबरम छह फुट का था। चौड़ी छाती। बलवान बाहु और पैर। बाप की ओर से पिलाई गई कर्मठता की दवा उसके शरीर में समा गई और पुष्ट कर गई। उसका शरीर अब तक किसी को कष्ट न देने के कारण और भी मजबूत बन गया था। लगता था कि उसी भरोसे वह सुदृढ़ है। तीन-चार पहलवानों को एक साथ पकड़कर परास्त करने की शक्ति उसमें दिखायी दे रही थी। घोर अन्याय के सामने खड़े होने का साहस उसमें है। दो बैलों द्वारा खींची जानेवाली भारी बैलगाड़ी को वह अकेला खींच सकता है। वह अस्पृश्यता को सिरे से खारिज करने का निर्णय एक ऐसे समाज में लेता है, जहाँ सामंती तेवर की मौजूदगी पाशविक स्तर तक है।

11.4.1 विद्रोही चिदंबरम

चिदंबरम के चरित्र की बुनियादी विशेषता है- विरोध। पर यह एक दुखद सचाई भी है कि वह पिता के यथास्थितिवादी तेवर का विरोध तो करता है, पर कई बार पिता के दबाव के कारण अन्याय बरदाश्त करने के लिए मजबूर भी होता है। लेकिन विरोध की उसकी अंतर्वर्ती चेतना सदैव सक्रिय रहती है। कथा में उसके प्रतिरोधी तेवर का एक स्थान पर प्रतीकात्मक ढंग से बेहद प्रभावी चित्रण किया गया है। जब चिदंबरम की पत्नी के साथ सवर्ण युवक हाथ पकड़कर जबरदस्ती करने की कोशिश करता है, तब उसकी पत्नी हाथ छुड़ा कर भाग कर घर आ गयी। जब वह घर आयी, तब चिदंबरम का पिता आसन्न संकट को भाँप कर चुप रहने की नसीहत देता है। कहानीकार इसके बाद की घटना का इस तरह वर्णन करते हैं, 'उसी समय ताड़ के फलों का गुच्छा कंधे पर रखकर चिदंबरम वहाँ पहुँचा। उसकी कमर में हँसिया था सब बात उसके समझ में आयी। कमर से हँसिया निकालकर ताड़ के एक फल पर जोर से मारा वह उसमें गड़ गया। उसके प्रतिशोधी तेवर की अनेक अनुगूँजे कथा में है। मनपसंद लड़की से शादी करने के लिए, वह वेणुगोपाल मंदिर में

पच्चीस नारियल फोड़ने की अनुमति माँगता है। लेकिन परिपाटी के अनुसार उसे मंदिर प्रवेश की इजाज़त नहीं है। उसका प्रतिरोधी मन मंदिर प्रवेश के पुरातन नियम तोड़ मंदिर प्रवेश कर नारियल फोड़ने का संकल्प लेता है। गाँव का सामंती ढाँचा इसकी इजाज़त नहीं देता। लेकिन एक पुलिस अधिकारी की सहायता से वह मंदिर में प्रवेश कर अपनी मनौती पूरी करता है। उसी तरह रेलवे स्टेशन पर सवर्णों के तथाकथित सम्मान में वह सार्वजनिक बेंच से उठने से इनकार कर देता है। ये दोनों घटनाएँ सवर्णों को बेहद अपमानजनक लगीं और वे चिदंबरम को सबक सिखाने की जुगत भिड़ाने लगे। जब गाँव के कुएँ में मरे हुए बैल का धड़ पाया गया, तब जैसे सवर्ण मुखिया और उनके खैरख्वाहों को मनमाँगी मुराद मिल गयी। इस कृत्य के लिए बिना किसी प्रमाण के चिदंबरम को दोषी ठहरा दिया गया। जब चिदंबरम को पिता समेत सजा दी जाने लगी उस समय भी चिदंबरम ने विद्रोही तेवर का परिचय देते हुए पिता से मुखिया को लक्ष्य कर कहा, 'बापू! तू मुझे इजाज़त दे दे। मैं इसे मार डालूँगा।'

11.4.2 समग्र मनुष्य

चिदंबरम न केवल विद्रोही चेतना का परिचय देता है, वह एक समग्र मनुष्य के रूप में कथा में उपस्थित होता है। जैसे, वह सच्चा प्रेमी है। इतना सच्चा कि अपनी या विश्व दृष्टि का परिचय देता है। जहाँ उसके पिता सवर्ण अनुकूलित दलित हैं, वहीं वह बदलते हुए दलित दृष्टि का परिचय देता है। इन विशेषताओं के आधार पर यह कहना एकदम मुनासिब होगा कि वह समग्र मनुष्य के रूप में हमारे सामने आता है।

11.5 चिदंबरम की स्त्री : परंपरा की राह में प्रतिशोध की इबारत

'गाँव का कुआँ' कहानी में सर्वाधिक विद्रोही पात्र चिदंबरम की स्त्री है। चिदंबरम का विद्रोह पिता मोती के कारण अनेक बार समझौता के लिए विवश होता है। लेकिन चिदंबरम की पत्नी कभी समझौता नहीं करती। वह बला की सुंदर और सुघर है। उसके मांसल सौन्दर्य पर सवर्णों के भोगवादी नज़रिए की गिद्ध दृष्टि है। पर वह सवर्णों के आतंक से किसी भी सूरत में समझौता नहीं करती। वह एक बलशाली स्त्री है, तथा पति के खेती तथा अन्य कामों में सहयोग करती है। वह अनेक तरह से हूनरमंद है। ऐसा कहा जा सकता है कि वह पारंपरिक समाज में सृजन और प्रतिशोध की इबारत लिखती है। कथा लेखक ने एक बहुत अर्थपूर्ण संकेत के द्वारा चिदंबरम की पत्नी की मेधा और प्रतिशोध भावना का चित्रण किया है। जब चिदंबरम की पत्नी की बाँह को सवर्ण युवक पकड़ने की कोशिश करता है, तब चिदंबरम की पत्नी न सिर्फ बाँह छुड़ाकर भागती है, बल्कि प्रतिशोध का निर्णय भी लेती है। यद्यपि कथा में यह उल्लेख नहीं है कि मरे हुए बैल के धड़ को किसने कुएँ में डाला पर रस्सी में जिस गाँठ का प्रयोग किया गया था और चिदंबरम को प्रताड़ित करने के बाद रात में सोये हुए मुखिया को रस्सी की जिस गाँठ से बाँधा गया था वे दोनों गाँठें एक थीं और उन दोनों गाँठों पर चिदंबरम मुग्ध होता है। यह मुग्ध होना अपनी पत्नी पर चिदंबरम के मुग्ध होने के नज़रिए का ही विस्तार है। बकौल कोलाकलूरी इनाक, 'चिदंबरम बहुत देर से सोच रहा था। कुएँ में लगे रस्से! रस्सों में पड़ी गाँठें। सुन्दर-सुन्दर गाँठें। कुशलता से लगायी गयी गाँठें!' इस तरह के अन्य अनेक प्रसंगों को कथा विकास में पिरोया गया है, जिनसे यह प्रकट होता है कि चिदंबरम की पत्नी का व्यक्तित्व बदलती हुयी नयी दलित स्त्री के रूप में विकसित होता है। कहानी के एक प्रसंग में जब मुखिया को अपने किये का पछतावा होता है, तब दूसरी तरफ लोग मरे हुए बैल के धड़ को कुएँ से निकालने की कोशिश में लग गये, पर असफल रहे। ऐसे में चिदंबरम की पत्नी अकेले दम पर बैल को कुएँ से निकालने के लिए उद्यत होती है। फिर अन्य लोग हाथ बँटाते हैं। फिर सभी मिलकर कुएँ के खराब पानी को बाहर निकालते हैं और गाँव के सवर्ण-दलित समूह

मिलकर यह निर्णय लेते हैं कि अब कुएँ के पानी का सभी उपयोग कर सकते हैं। एक तरह से चिदंबरम की स्त्री व्यवस्था परिवर्तन का कारक बनती है।

11.6 चिदंबरम बनाम मोतीः परंपरा का अनुभव और भविष्य दृष्टि का सवाल

जिन कथा पात्रों से कथा दृष्टि का निर्माण हुआ है, उनमें यदि दो प्रमुख पात्रों मोती और चिदंबरम पर नज़र डालें तो कह सकते हैं कि इन पात्रों के माध्यम से कथाकार ने परंपरा के अनुभव और भविष्य दृष्टि के सवाल को उठाया है। मोती ने अपने जीवन अनुभवों से जो हासिल किया है, उसमें विचार की एक सुसंगत प्रक्रिया है। हालाँकि ये भी सही है कि वह एकाधिक बार हमें सवर्ण अनुकूलित दलित लगता है। पर यह समझने की ज़रूरत है कि उसके पीछे उसकी विवशता ही है, जिसे गाँव का दलित बखूबी समझता है। उन प्रसंगों पर एक नज़र डालना मुनासिब होगा, जिनके आधार पर मोती के चरित्र की विशेषताएँ प्रकट होती हैं। कथा के आरंभ में वह अनुकूलित दलित की विवश चेतना के रूप में नज़र आती है, तब मोती उससे कहता है, 'चुप रह! कोई बच्चा बदमाशी कर गया है। इसके लिए इतना रोने की क्या ज़रूरत है? इससे क्या मिलेगा? उसका पाप उसे ही खा जाएगा। क्यों पागल बनते हो? हर तालाब के मेढक को अपने ही तालाब में रहना शोभा देता है। भगवान ने जिसको जो दिया है, वही मिलता है। जैसी करनी वैसी भरनी। ख़ामख़ाह हम क्यों पागल बनें। मुँह बंद कर, सब अपने-अपने काम में लगें।' दलित बस्ती में अवस्थित कुएँ के सूख जाने के बाद गाँव में बचा वह एकमात्र कुआँ जिसमें पानी था, वह दलित और सवर्ण बस्ती के ठीक बीचो-बीच बसा था। उस कुएँ से सवर्ण पानी भर सकते थे, लेकिन दलितों को पानी भरने की इजाज़त नहीं थी। दलित पानी तभी ले सकते थे, जब कोई सवर्ण उन्हें दूर से पानी दे। अस्पृश्यता और सामंती उत्पीड़न के अनेक प्रसंगों के कारण मोती को वह कुआँ गुलामी का प्रतीक लगता था। बकौल मोती, 'वह कुआँ पीढ़ियों से मनुष्य की गुलामी का प्रतीक था। शिथिल और विकृत संस्कृति, संस्कृति के ऊपर जमी गंदगी-सा बैल का धड़।' रामू को जूते बनाने में महारत हासिल थी। लेकिन वह यह सोचकर दुखी होता था कि ऐसे हुनर से क्या फ़ायदा कि खुद उसी के बच्चे - चिदंबरम के पैर खुले रहते हैं, उसे जूता-चप्पल नसीब नहीं। इस तरह के अनेक प्रसंग कथा में गुँथे हुए हैं, जिनसे उसके जीवन अनुभवों में मौजूद दलित पीड़ा और उसकी अमानवीयता से रू-ब-रू होने का पता चलता है। कथा में जहाँ मोती परंपरा के अनुभव का प्रतीक है, वहीं चिदंबरम भविष्य दृष्टि के तेवर के साथ कथा में उपस्थित होता है। चिदंबरम अस्पृश्यता से सर्वथा असहमत था। उसके जीवन के अनेक प्रसंगों से भविष्य के दलित का पूरा खाका सहज ही उपलब्ध होता था। वह मंदिर में दलित प्रवेश के नकार को सिरे से खारिज करते हुए विरोध के बावजूद मंदिर प्रवेश करता है। स्टेशन के सार्वजनिक बेंच पर सवर्णों के आने पर भी उनके वर्चस्व को नकारते हुए उठता नहीं है वरन बैठा रहता है। पत्नी की विद्रोही चेतना का सम्मान करता है। पिता मोती को जब ज़मींदार और उसके कारिंदे मारते हैं, तब चिदंबरम उनसबों को मार डालने की बात करता है। इन सभी प्रसंगों से चिदंबरम की भविष्य दृष्टि का पता चलता है।

11.7 गाँव का कुआँ : भाषा और शिल्प

'गाँव का कुआँ' कहानी में जिस शिल्प का प्रयोग किया गया है, उसकी अनेक विशेषताएँ हैं। भाषा, बिम्ब, कहानी तकनीक जैसे संदर्भों में हम कहानी की शिल्पगत विशिष्टताओं को समझ सकते हैं। कहानी में अतीत और वर्तमान की आवाजाही है। कहानी की शुरुआत

में गाँव के उस प्रसिद्ध कुएँ का ज़िक्र है, जिसमें मरे हुए बैल के धड़ का चित्रण है। यह कथा में वर्तमान है। फिर कहानी आगे बढ़ती है और अतीत के उन अनेक प्रसंगों का उल्लेख मिलता है, जिनसे कथानायक चिदंबरम से जुड़े वे पहलू अवतरित होते हैं, जिनमें चिदंबरम की मानसिकता के विद्रोही तेवरों का वर्णन है, वहाँ सवर्ण दंभ को चुनौती है। जनतान्त्रिक जीवन की माँग का सिलसिला गाँव के जीवन में दस्तक देता है। कहानी फिर वर्तमान में आती है और अपने उद्देश्यों को पूरा करती है। कहानी की भाषा के बिंब अनेक स्थानों पर उल्लेखनीय हैं। जैसे मुखिया के क्रोध का वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है, 'मुखिया की आँखें लाल-लाल हो गयीं। ये क्रोध भरे शब्द ऐसे लग रहे थे कि मुखिया की मूँछों से सरककर दाँतों के बीच पैने होकर बरस रहे थे।' सवर्ण-दंभ को चुनौती देती चिदंबरम की अभिव्यक्ति में मौजूद बिम्ब भी देखने लायक है, 'उसकी कमर में हँसिया था। सब बात उसे समझ में आयी। कमर से हँसिया निकालकर ताड़ के एक फल पर ज़ोर से मारा वह उसमें गड़ गया।' कथा में वातावरण चित्रण के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह भी अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है। एक उदाहरण द्वारा इसे समझें, मुखिया की सामंती ठसक का चित्रण करते हुए इनाक कहते हैं, 'मुखिया अपने घर की चारदीवारी के पास बैठें। कुछ आसामी सामने खड़े हो गये। मुखिया ने एक नौकर के हाथों तम्बाकू का पत्ता लिया। उसका सिगार बना लिया। सुलगाया। चार बार धुआँ अंदर खींचा। धुएँ को अपने गालों में भरकर कुछ देर तक स्वाद लिया और फिर छोड़ा अंत में धुएँ के एक फूँक के साथ जोड़कर जोर से बोला, 'चिदंबरम ही। चिदंबरम का नाम ऐसे निकला मानों वचह धुएँ की मशीन से निकले छिले धान का गोला हो।' कहना न होगा कहानी न सिर्फ कथ्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है, इसमें व्यवहृत शिल्प भी प्रभावी है।

11.8 रचनाकार बोया जंगय्या : जीवन और कर्म

बोया जंगय्या का जन्म 01 अक्टूबर 1942 को तेलंगाना क्षेत्र के नालगोंडा जिले में हुआ था। बोया को तेलुगु जगत में जातरा जंगय्या के नाम से ख्याति प्राप्त हैं। उनके पहले ही उपन्यास 'जातरा'1998 को पोट्टू श्रीमालू तेलुगु विश्वविद्यालय से सर्वश्रेष्ठ उपन्यास का पुरस्कार मिला। तभी से उपन्यास का नाम ही उनकी पहचान का अंग बन गया। उन्होंने अपना पहला नाटक कसथा सुखालू सन् 1963 में लिखा। तब से उनके लेखन की अनवरत यात्रा जारी है। उनके लिए जीवन का दूसरा नाम ही यात्रा है। वे कहते हैं 'देश भर घूमना और लोगों को देखते जाना ही उनका उद्देश्य है'।

इस घुमक्कड़ी ने ही उनके जन जीवन से गहरे लगाव की आधार भूमि तैयार की है। उन्होंने दलित समाज की पीड़ा और साधारण जनता के त्रास को ही साहित्य की विभिन्न विधाओं में व्यक्त किया है। उनके रचना संसार में कहानी विधा इस कार्य में प्रमुख रूप से आई है। उनके 'बाजा कथालू', 'अडविपूलु', 'मंन तेलुगु', 'बडिलो चेप्पनि पाठालु', 'आट-पाटलु' आदि चर्चित कहानी संग्रह रहे हैं। जातरा 1988 और जगड़म 2003 उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने जीवन की हकीकत को बड़े कैनवास पर उतारा है। इसके अलावा दलित समाज के लिए अपना जीवन लगाने वाले महान नेताओं-विचारकों की जीवनियों के लेखन का कार्य किया है- भारत रत्न डॉ. आंबेडकर, समतावादी बाबू जगजीवन राम और देशाध्यक्ष-के.आर.नारायणन। उनकी रचनाएं लगातार विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है। रचना जगत में उनके योगदान के लिए उन्हें कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। इन्हें गुर्रम जाषुआ, एन.टी.आर, स्वराज्य लक्ष्मी, प्रतिभा आदि पुरस्कारों के साथ दलित साहित्य अकादमी की फेलोशिप प्राप्त हुई। इन्होंने मलेशिया में आयोजित दूसरी तेलुगु अंतर्राष्ट्रीय कांफ्रेंस में भागीदारी की।

11.9 परती जमीन : मूल वस्तु और संवेदना

'परती जमीन' दलित समाज के जीवन की एक कठोर हकीकत है। ऐसी जमीन जिसको बंध्या माना जाता है, जिस पर कुछ उगता नहीं है। आजादी के बाद दलित समाज को एक नागरिक के रूप में अधिकार और समानता मुहैया कराना कल्याणकारी राज्य का महत्वपूर्ण दायित्व था। भूमि के समान वितरण के प्रयास कई कानूनी दाँव पेंच और अदालती कार्यवाहियों के बीच फँस गए। ऐसे में राज्य ने परती जमीन दलितों को मुहैया कराने का निर्णय लिया। यह एक लोकतांत्रिक और संवैधानिक निर्णय था। लेकिन जाति और वर्ण के हमारे घोर अलोकतांत्रिक समाज में यह निर्णय ही भारी विवाद को जन्म देता है। इस विवाद के साथ ही कहानी का आरंभ होता है। यह गाँव आजादी के बाद का आजाद गाँव है। लेकिन आरंभ में ही लेखक इस आजादी और इसकी उम्मीद की कलई खोल देता है- "छह सात सौ घरों के उस गाँव में ज्यादातर लोगों की जिंदगी मेहनत मजदूरी पर निर्भर है। कई बरस पहले निजाम शासकों के राज्य का अंत होने के बावजूद, उनके प्रतिनिधि रामरेड्डी पटेल और मालिक रंगाराव अब भी जिंदा है।" यह एक राजनैतिक आजादी है, दलित समाज अभी भी पटेल और सामंत का गुलाम है। इस गुलामी के मूल में सदियों की जाति व्यवस्था है, जो सदियों से कभी बदली नहीं है। शासन भले निजाम का हो अथवा आजाद देश के हुक्मरान का। सरकार ने घोषणा की है कि बचत जमीन को गाँव के भमिहीनों के बीच बाँटा जाएगा। इस गाँव में बचत में तीस एकड़ की परती जमीन पड़ी है। इस भूमि पर दलितों का दावा बनता है। वहीं गाँव में एकलौता समूह है जो भूमि के स्वामित्व से वंचित है।

गाँव की अन्य जातियाँ इस निर्णय के परिणामों के दूरगामी असर से वाकिफ है। जमीन एक अधिकार है, एक अधिकार व्यक्ति में आत्म गौरव की भावना जगाता है। किसी व्यक्ति के पास आत्म गौरव का भाव है तो वह कोई गुलामी स्वीकार कर ही नहीं सकता है। चाहे वह गुलामी जाति की हो अथवा धर्म की। ऐसे ही आत्म गौरव के क्षणों में महान दार्शनिक नीत्से ने भगवान के अंत की घोषणा कर दी और मानवता धर्म की गुलामी से मुक्ति के रास्ते पर चल पड़ी। जमीन के अधिकार की घोषणा मात्र से गाँव के जीवन में हलचल मच जाती है। गाँव की सभी जातियाँ एक ओर और दलित जनता दूसरी ओर। दलितों को परती जमीन साफ करने से मना किया जाता है। लेकिन अपने अधिकारों का स्वाद चख चुके दलित कबीरदास की उक्ति-

'सूराँ ते पहचानिए जो लड़ै दीन के हेत-
पुर्जा पुर्जा होइ मरै कबहुँ न छाँड़ै खेत'

के अनुसार जमीन पर डटे रहे। उनके इस कार्य में राजि के बेटे-गोपाल का सहारा है। वह गाँव के पढ़े लिखे दलित के रूप में सामने आता है। वैसे कहानी में गोपाल कही भी प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित नहीं है, लेकिन जूलियट सीजर की तरह वह रचना में अनुपस्थित रह कर भी उपस्थित लोगों से कहीं अधिक प्रभावशाली साबित होता है। उसका होना ही दलितों के लिए नैतिक बल का काम करता है। यह अलग बात है कि इसकी उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ती है। गाँव की दबंग जातियाँ उनके घरों में आग लगा देती है। माहौल में दहशत पैदा करती है। लेकिन कहते हैं कि आत्मसम्मान के लिए कोई भी कीमत ज्यादा नहीं होती है। दलित समाज अब सबके लिए तैयार है। झोपड़ियों में आग लगाना उस खीझ का परिणाम है, जो हार गए लोगों में आशंका से पैदा होती है। इससे संघर्ष मिटता नहीं है जब तक कि दमन करने वाले मिट नहीं जाते हैं। कहानी का अंत यथार्थपरक है। दलित बस्तियों में आग भारतीय समाज में एक चलन की तरह सामने आती है।

11.10 आर्थिक शोषण का जाति परक ढाँचा

जाति प्रथा वेद पुराणों में वर्णित दार्शनिक-सैद्धांतिक मतों पर आधारित है। संहिताओं में इसके पालन की आचार संहिता और व्यवहार का निरूपण है। इस समूचे बौद्धिक कसरत के पीछे आर्थिक दोहन का मंतव्य है- दलित समाज के श्रम पर एकाधिकार। गाँव के दलित को परती जमीन मिल गई तो वह पटेल के खेत पर मजदूरी क्यों करने जाए ? कमीना शब्द किसी के अपमान के लिए गाली के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि 'कमीना' शब्द मध्य काल में उस किसान के लिए इस्तेमाल किया जाता था, जो किसी दूसरे की जमीन पर दूसरे के उपकरणों से खेती बारी का काम करता था। ऐसे में उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई। उसका पेशा ही जाति बन गया और जाति ही गाली बन गई। इस दर्द को कभी कबीर दास ने कुछ इन शब्दों में व्यक्त किया है-"हम तो जात कमीना"।

कहानी में दलित समाज भी इसी दर्द से गुजरता है। जब उसका जमीन का स्वप्न साकार होता दिखता है तो उनमें बिजली की फुर्ती आ जाती है। उनकी दशा लेखक के शब्दों में कुछ यूँ होती है- 'हर घर' से एक के हिसाब से लगभग साठ हिरजन पेड़ काट रहे थे। उनके बच्चे, उनके बुजुर्ग सारे कूड़े को एक जगह पर जमा कर रहे थे। उनकी औरतें टोकिरयों में खाना ले आई थीं और उन टोकरियों को मेंड पर रखकर कूड़े के ढेरों को जला रहीं थी।" यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस समाज में केवल आदमी और औरत ही नहीं बच्चे और बूढ़े भी श्रम के काम में लगे हैं। कोई भी सदस्य आराम करता नहीं जान पड़ता। दूसरी ओर हम गाँव के सुखासीन समाज (लेजर क्लास) की ओर रूख करते हैं। इसमें पटेल, मालिक और पटवारी शामिल है। ये कोई काम नहीं कर रहे हैं केवल बातें कर रहे हैं और करते ही जा रहें हैं। इनकी बातों से भी कोई आभास नहीं मिलता है कि उन्हें कभी श्रम की आदत रही हैं। आश्चर्य की सीमा तब नजर आती है जब ये सुखासीन लोग दलित समाज को काहिल और नकारा कहते हैं-"जमीन उन्हें किसलिए चाहिए? अगर सरकार उन्हें जमीन दे देगी तो वे उसे कितने दिन रख पाएंगे? किसी लोट-घाट, बीमारी या शादी के लिए न भी हो तो पीने-पाने के लिए क्या वे जमीन को गिरवी नहीं रख देंगें। यह भंगिमा ही भारतीय गाँव ही नहीं समूचे समाज की बिडम्बना की ओर संकेत करती है। सुखासीन जातियाँ इस देश में कामगारों को, मजदूरों को उनके योगदान के महत्व के अहसास से वंचित करती हैं। यह बात भारत में केवल गाँवों में ही नहीं बल्कि पढ़े लिखे शहरी मध्य वर्ग के बीच भी बदस्तूर जारी है। क्या कारण है कि हर काम करने वाला व्यक्ति 'वाला' कहलाता है - रिक्शेवाला, सब्जीवाला, टैक्सीवाला, रजाईवाला, प्रेसवाला, बिजलीवाला, फलवाला, दूधवाला, कामवाली आदि। 'वाला' प्रत्यय लगा देने मात्र से ही उस व्यक्ति का मानवीय अस्तित्व समाप्त हो जाता है और साथ में ही उसके श्रम के लिए अहसान मंद होने की सहज मानवीय भावना की आवश्यकता भी समाप्त हो जाती है। आश्चर्य है कि कई बार हम रिक्शेवाले को 'रिक्शा' संबोधित करके ही बुला देते हैं। एक वस्तु और एक व्यक्ति के बीच भेद को ही मिटा देते हैं। इसके बाद बिना किसी अपराध भावना के मानवाधिकार आयोग के महत्व पर चर्चा सुन सकते हैं। मध्य वर्ग के बीच श्रमिकों की कामचोरी की शिकायतें उनके टाइम पास का बड़ा माध्यम होती हैं। श्रम के लिए हिकारत की यह मुद्रा हमारी भाषा की भंगिमा में समा गई है। पटेल जब दलित समाज को कामचोर कहता है तब उसकी हिकारत ही नजर आती है। वरना दलित और कामगारों की हाड़तोड़ मेहनत से ही उनके सुख और समृद्धि की इमारत खड़ी है।

जाति व्यवस्था सुखासीन समाज को सहूलियत देती है कि वह स्वयं श्रम से बच सकता

है, दूसरे से अनथक श्रम करवा सकता है और श्रम का कोई मूल्य न चुकाने की अपराध भावना से मुक्त रह सकता है। आर्थिक नियंत्रण और जातीय भेद की अस्पृश्यता के बीच के संबंध को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं- यह एक आर्थिक तंत्र के रूप में बिना किसी दायित्व के बेपनाह शोषण की इजाजत देता है। अस्पृश्यता केवल अपरिमित शोषण ही नहीं बल्कि अनियंत्रित आर्थिक दोहन का दूसरा नाम है।

इस कहानी में दलित दूसरों को अपने आर्थिक उत्पादन का समूचा लाभ औने पौने रूप में दे रहें हैं। इसलिए जब उनके पास परती जमीन के रूप में आर्थिक आत्मनिर्भरता का अवसर आता है, तब समूचा गाँव विरोध में खड़ा हो जाता है। लेकिन इस विरोध के दिन बहुत नहीं है। दलित समाज जजमानी व्यवस्था की जकड़न से आजाद है। आज आर्थिक स्वायत्ता उसे राजनैतिक स्वतंत्रता की तरह उसे उपलब्ध है। आगजनी की कुछ घटनाएं उसके मनोबल को गिरा नहीं सकती क्योंकि गोपाल जैसे दलित नवयुवकों के भीतर उससे कहीं प्रचंड आग उनके दिलों में लगी हुई है।

11.11 परती जमीन और धार्मिक ताना-बाना

लेखक ने कहानी को जमीनी हकीकत के आधार पर बुना-गुना है। गाँव को थकी हारी मानवता के लिए पनाह की तरह माना गया। शहरी मध्य वर्ग के लिए यह या तो नॉस्टेलजिया है अथावा कभी कभार भ्रमण की रूमानी जगह है। लेकिन गाँव के सामाजिक जीवन का घेर अलोकतांत्रिक ढाँचा कमजोर व्यक्ति के जीवन का नरक बना सकता है। आजादी के बाद पंचायत जैसी संस्थाओं को पुर्नजीवित करने और अधिकार दे कर सम्पन्न बनाने की बात चली। महात्मा गाँधी तो ग्राम स्वराज्य का शासन चाहते थे, लेकिन डॉ. आम्बेडकर ने इसका विरोध किया। गाँव का जाति परक और मूल्य विहीन रूप भारत में नवजात लोकतंत्र का गला घोट सकता था। सामाजिक मूल्य भावना के अनुसार भूमिहीन दलित को परती जमीन का अधिकार दिया जाना चाहिए। गाँव अगर एक समुदाय है तो इस समुदाय के सभी सदस्यों को मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार मिलना चाहिए। परती जमीन का संसाधन भूमिहीनों को यह गरिमा उपलब्ध कराने की क्षमता रखता है और गाँव समुदाय से दलित समाज की यह माँग नितांत औचित्यपूर्ण है। रूसो के शब्दों में कहें तो 'समान हित और समान शुभ के आधार पर गाँव अथवा किसी समुदाय का समझौता संपन्न होता है।' लेकिन गाँव के गैर दलित इस जायज माँग का नाजायज रूप से विरोध करते हैं। यहाँ तक कि वे भमिहीनों की झोपड़ियों में आग लगा देते हैं। इसके बावजूद अपराध बोध की सहज मानवीय भावना की कोई रेखा गैर दलितों में दिखाई नहीं देती है - पुजारी के कहने पर कि भगवान की मूर्ति को देव की मूर्ति को कूढ से हिला देने से ही हरिजनों की बस्ती जल गई। तब मालिक रंगा राव ने हाँ कहकर अपनी सम्मति दे दी। आखिर यह हृदयहीनता क्यों? इस प्रश्न के उत्तर में हमें धर्म की पड़ताल करनी पड़ेगी।

कहानी में गाँव का वर्णन है जिसमें केवल दलित ही नहीं, विभिन्न जातियों के लोग शामिल है। केवल पटेल और पंडित ही नहीं धोबी, ग्वाला और अन्य जातियाँ भी है। लेकिन दलितों को परती जमीन के सवाल पर पूरा गाँव दलित और गैर दलित के बीच विभाजित हो जाता है। चरवाहे और धोबी जैसी कामकाजी जातियाँ भी पटेल पटवारी और पंडित के साथ हो जाती हैं। जबकि सामान्य विवेक के अनुसार उन्हें दशाओं में समानता और शोषण की समाप्ति के लिए दलितों के साथ होना चाहिए। यही धर्म की भूमिका उभर कर आती है। जातियाँ एक दूसरे से घृणा के रिश्ते से जुड़ती है। हमेशा एक दूसरे से उपर उठने की होड में रहती है। इस स्थिति के बारे में 'एनहिलेशन ऑफ कास्ट्स' में डॉ. अम्बेडकर जाति

के समुदाय विरोधी भूमिका दर्शाते हुए कहते हैं - हिंदू लोग अक्सर गिरोह और गुट के समाज विरोधी व्यवहार की शिकायत करते हैं। वे बहुत सुविधा पूर्वक भूल जाते हैं कि समाज विरोधी भाव स्वयं उनकी जाति व्यवस्था का स्वभाव है। एक जाति दूसरी जाति के लिए नफरत के गीत उसी तरह से गाती है जिस प्रकार के गीत विश्वयुद्ध के दुश्मन अंग्रेज और जर्मन एक दूसरे के लिए गाते थे। आश्चर्य इस बात पर है कि क्यों दलितों के विरोध में पटवारी पंडित और ग्वाला, गडेरिया जैसी विरोधी जातियाँ एक हो जाती है?

परती जमीन कहानी के झगड़े में ऐसा ही होता है। उनके बीच अंतर्विरोधों का समाहार सनातन धर्म की भूमिका पर होता है। पुरोहित गाँव के समाज का वैचारिक नेतृत्व करता है। वह अपनी व्याख्या, परंपरा और आचार संहिता के आधार पर समस्त गुटबंदियों की व्यवस्था और उनका संचालन करता है। इस वैचारिक नेतृत्व की व्याख्या करते हुए प्रो. विमल थोरात कहती हैं - 'इस जनतांत्रिक देश में मुस्लिम और दलित, कुल जनसंख्या के एक तिहाई होते हुए भी फाँसीवादी क्रूरता के शिकार है। यह इसलिए संभव है क्योंकि बर्बर आतंक को जीवित रखने वाला ब्राह्मणवादी हिन्दुत्व फोर्स सांप्रदायिकता और जातिवाद का इस्तेमाल करने में कामयाब हो जाता है।' परती जमीन कहानी में जब दलित परती जमीन को छोड़ने के तैयार नहीं है। तब सनातन धर्म की जुगत काम आती है। यह धर्म अस्पृश्यता की दीवार से दलितों को अलग कर देता है। उनके सामने बनावटी नैतिक संकट खड़ा करता है - भगवान के नाम पर इस जमीन का पट्टा करा दिया जाए तो भले मानस खेती कर सकेंगे और गाँव की प्रजा की ओर से इस मंदिर में पूजा पाठ भी किया जा सकता है। इस बात पर विचार कीजिए..... भगवान के नाम के इस्तेमाल से पुरोहित ने एक तीर से कई शिकार कर लिए। एक ओर पूरे गाँव का भावनात्मक आधार पर दलितों के खिलाफ एकजुट कर लिया दूसरी ओर परती जमीन के दलितों के पास जाने की किसी संभावना को ही खत्म कर दिया। दलितों ने जब परती जमीन को जोतने की कोशिश की तो सदा की तरह गाँव में ही आश्चर्यजनक रूप से भगवान की एक मूर्ति निकल आई।

मूर्ति के रक्षण और उसके लिए मंदिर की जरूरत को पूरे गाँव ने महसूस किया। परती जमीन पर दलितों के अधिकार को ध्वस्त करते हुए उनकी झोपड़ियों में आग लगा दी जाती है। लेकिन नई पीढ़ी के प्रतिनिधि गोपालम पर इस धार्मिकता का कोई प्रभाव नहीं है। उसके हाथ धर्म के आगे याचना की भंगिमा में नहीं बल्कि प्रतिरोध की मुद्रा में है।

11.12 परती जमीन : भाषा और शिल्प

कहानी का शिल्प यथार्थपरक है। लेकिन अर्थ के प्रतीकों का भी सहज प्रयोग दिखाई पड़ता है। कहानी का शीर्षक 'परती जमीन' इसी प्रकार का एक प्रतीक है। परती जमीन एक प्रकार से उपेक्षित जमीन है, दलित समाज भी जाति वयवस्था के द्वारा उपेक्षित समाज है। दोनों ही एक दूसरे से स्वाभाविक रूप से जुड़ते हैं। दूसरे स्तर पर परती जमीन में इसके उपजाउ बन जाने की संभावना समाहित है। दलित समाज में चेतना के बीज पड़ चुके हैं। यह चेतना ही गोपाल जैसे युवकों की नई फसल तैयार कर रही है। अकारण नहीं है कि कहानी के अंत में परती जमीन का सपना गोपाल की प्रतिरोध भावना से जुड़ जाता है। यह परती जमीलन के उपजाउ बन जाने की दिशा की ओर संकेत है।

कहानी में लेखक ने भाषा के स्तर पर कम शब्दों से काम लिया है। लेकिन इन थोड़े शब्दों में गाँव की जटिलता को बखूबी उभार दिया है। कहानी में सभी सवर्ण पात्र अपने पदनाम

अथवा जाति सूचक नामों की प्रतिष्ठा के साथ उपस्थित हैं। वहीं दलित पात्र लिंगग्या, रंगग्या और लच्चया जैसे चलताउ नामों अथवा अनाम रूप में आते हैं। यह नाम ही गाँव में उनकी महत्वहीनता को उजागर करते हैं। केवल राजि के बेटे ने शिक्षा प्राप्त की है। अपने लिए एक सम्मान अर्जित किया है। उसका नाम इस सम्मान के अनुकूल भंगिमा के साथ आता है। लेखक ने कौशल से गाँव में जाति संरचना की सत्ता को कहानी की भाषा संरचना में अभिव्यक्त कर दिया है।

11.13 सारांश

'गाँव का कुआँ' और 'परती जमीन' कहानियाँ मात्र कहानियाँ नहीं, बल्कि दलित जीवन की तल्ख हकीकत है। यह दोनों उपादान किसी दलित के जीवन में बार बार आते हैं। शायद इसी को ध्यान में रखकर प्रेमचंद ने अपनी प्रसिद्व कहानी का नाम ठाकुर का कुआँ रखा था। दलित चेतना के कमोबेश सभी संघर्षों में जल और जमीन मुख्य विाय के रूप में उभर कर आते हैं। दोनों ही कहानियों में इन प्रतीकों के माध्यम से दलित जीवन की विडम्बना को उभारा गया है। लेकिन इनमें दुख अथवा निराशा का निरूपण नहीं है। इनमें दलित चेतना के साथ नई पीढ़ी मौजूद है। इसी पीढ़ी को धर्म भरमा नहीं सकता और दमन डरा नहीं सकता है। इन कहानियों के दुखपूर्ण अंत के बावजूद चिदंबरम और गोपालम जैसे पात्रों की उपस्थिति आश्वस्त करती है। इनके अंत में ही, एक नए बेहतर समाज के आरंभ की दिशा समाई हुई है।

इकाई 12 'अमावस' और 'मोची की गंगा'

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.3 कन्नड दलित साहित्य की पृष्ठभूमि

12.4 देवनूर महादेव : जीवन परिचय और कृतित्व

12.4.1 देवनूर महादेव का भाषा संबंधी दृष्टिकोण

12.5 अमावस कहानी : विषय वस्तु और संवेदना

12.5.1 अमावस : सामाजिक आर्थिक दबाव और शोषण के संदर्भ

12.5.2 विद्रोह का स्वरूप

12.6 अमावस : भाषा और प्रतीक

12.7 मोची की गंगा : विषय वस्तु और संवेदना

12.7.1 मोची की गंगा : कहानी की पृष्ठभूमि

12.7.2 सांस्कृतिक विरासत और समकालीनता

12.8 मोची की गंगा : भाषा और शिल्प

12.9 सारांश

12.0 उद्देश्य

खंड की पिछली इकाई में आपने तेलुगु दलित कहानियों का अध्ययन किया है यह इकाई कन्नड दलित कहानियों पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- कन्नड दलित साहित्य की परंपरा से परिचित हो सकेंगे;
- कन्नड दलित कहानी की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे;
- दलित जीवन की बनावट से अवगत हो सकेंगे;
- दलित साहित्य और कहानी के महत्व को पहचान सकेंगे;
- कन्नड दलित साहित्य के प्रमुख कहानीकारों के रचनात्मक अवदान से परिचित होंगे;
- कन्नड दलित कहानीकार मोगली गणेश की कहानियों से परिचित होंगे; और
- 'अमावस' और 'मोची की गंगा' कहानियों का शिल्प और भाषा को समझ सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप कन्नड साहित्यकार देवनूर महादेव की 'अमावस' कहानी और मोगली गणेश की मोची की गंगा। का अध्ययन कर सकेंगें। यह अध्ययन कन्नड दलित साहित्य की परंपरा के संदर्भ में किया जाएगा। कन्नड दलित कहानी के पटल पर देवनूर

महादेव एक विख्यात नाम है। उनकी कहानी 'अमावस' अपनी अलग बानगी के साथ लेखक की ख्याति को ही सार्थक करती है। यह कहानी बिना किसी नारे अथवा चीख पुकार के दलित समाज के मर्मान्तक क्षणों और उनकी स्मृतियों को प्रस्तुत करती है। अमासा और कुरियय्या जैसे दलित पात्र अपने अंधकार भरे जीवन को जिस सहजता से जी रहे हैं, उनका अंधकार में इस तरह सहज रूप से जीते जाना भयावह लगता है। इस जीवन में दूर दूर तक संभावनाओं के लिए कोई गुंजाइश नहीं दिखाई पड़ती है। समाज में दलित के प्रति हिंसा भारतीय जीवन का एक रोजमर्रा का मान्य सामाजिक व्यवहार है। इससे भी प्रभावी हिंसा वैचारिक और सांस्कृतिक स्तर पर की गई है। जब विचार पर असर आता है तो गुलाम के लिए अपनी गुलामी का अहसास ही मर जाता है। शरीर की बेडियो से विचारों के ये बंधन शोषण का कहीं कारगर हथियार है। हिंदू धर्म में वेदांत, माया, कर्मफल और अवतारवाद आदि ने वंचित समाज में दमन को इतने बारीक रूप में बैठा दिया है कि उन्हें इसमें कोई विसंगति नजर ही नहीं आती है। देवनूर महादेव का रचना कर्म इस विसंगति को ही अपने साहित्य के जरिए दर्शाता हैं। संभावनाओं से वंचित जीवन के लिए अमासा और कुरिय्या के मन में मूक विद्रोह का निरूपण ही अमावस कहानी में किया गया है। अमासा और कुरिय्या के जीवन की नाउम्मीदगी का अहसास पाठक को कराते हुए यह कहानी हमारे जाति समाज की भयावहता को दिखाती है और लोगों को एक बेहतर मानवीय समाज की ओर ले जाने की उम्मीद जगाती है।

12.3 कन्नड दलित साहित्य की पृष्ठभूमि

कन्नड में दलित साहित्य का उद्देश्य दलित समाज की मुक्ति है। वैसे इस उद्दश्य के साथ पहली बार भक्ति आंदोलन में कविता के रूप में साहित्य ने आंदोलन का कार्य किया था। चेनैय्या एक ओर अपना मोची का काम करते थे और दूसरी ओर कविता की रचना करते थे। दलित कवि कालवै ने 12वी सदीं में अपने आक्रोश और सरोकारों को व्यक्त किया है। आध्यात्मिक स्तर पर इनकी कविताओं में मुक्ति की जो आकांक्षा है उसका अभिप्राय वास्तव में लोक संसार में उनके साथ होने वाले भेदभाव से मुक्ति से है। लेकिन उनके संदेश किसी राजनैतिक परिणति के अभाव में कारगर नहीं हो पाए। इतना अवश्य हुआ कि उनके समानता के विचार और आकांक्षाएँ जनसमाज के प्रतिरोध की चेतना का अंग बन कर बीच स्मृतियों के रूप में जीवित बने रहे।

आधुनिक कन्नड साहित्य में प्रगतिशील धारा ने दलितों के जीवन को अपनी रचनाओं का विषय बनाया और उनके उपर काफी रचनाएं लिखी गई। प्रगतिशील साहित्य आगे चलकर बंड्या या बंद्या और दलित साहित्य की धाराओं में बँट गया। इसमें यू.आर. अनंतमूर्ति, चंद्रशेखर पाटिल और वामपंथी विचारधारा के लेखकों ने बंड्या या बंद्या साहित्य को सम्पन्न बनाया। वही दलित साहित्य में सिद्वलिंगैय्या, कृष्णय्या और देवनूर महादेव जैसे लेखकों ने अपनी रचनाओं में अनुभवों से दलित जीवन संसार को एक भिन्न रूप और संवेदना के साथ व्यक्त किया। कन्नड दलित साहित्य के उपर मराठी दलित चेतना का गहरा प्रभाव पड़ा है। दलित पैंथर्स ने विद्रोह की जो मशाल जलाई उससे पडोस का कन्नड भाषी समाज प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सकता था। लेकिन जिस मनोदशा में यह प्रभाव ग्रहण किया गया, उसके लिए परिस्थितियाँ कन्नड जीवन में तैयार हुई थी। ऐसा नहीं हुआ कि मराठी दलित साहित्य को गणित के किसी फॉर्मूले की तरह फिट करके कन्नड दलित साहित्य की रचना का रातोरात ढाँचा खड़ा कर दिया गया। कन्नड समाज में दलित जीवन का कमोबेश वही दमन जारी था जो पूरे भारत में सामाजिक चलन और धार्मिक कर्तव्य के रूप में मान्य रहा था। इस दमन का प्रतिरोध भी समानांतर रूप से उपस्थित था। इस प्रतिरोध में मुख्य भूमिका शैक्षिक उर्जा से भरे हुए दलित नवयुवकों ने निभाई। विख्यात दलित साहित्यकार सिद्वलिंगैय्या ने अपनी आत्मकथा

में इन परिस्थितियों की ओर संकेत किया है। दलित छात्र अपने सामाजिक वजूद के लिए निरंतर बेचैनी महसूस कर रहे थे। अपने संघर्ष की दिशा तय करने के लिए, वैचारिक प्रेरणा के लिए सभी दिशाओं में प्रयास किए। यहाँ तक कि सिद्धलिंगैय्या और उनके साथियों ने महान बुद्धिवादी विचारक ई. रामास्वामी पेरियार को भी आमंत्रित किया। इन परिस्थितियों के बीच चिंगारी का काम किया – बी. बासवलिंगप्पा ने जो कर्नाटक मे देवराज उर्स सरकार में दलित मंत्री थे। दलितों के सशक्तीकरण के लिए वे संस्थागत उपाय के लिए हावनूर आयोग की सिफारिशों को लागू किए जाने की माँग कर रहे थे। इस बीच एक इंजीनियरिंग कॉलेज में 'दलित विद्यार्थी संघ' की सभा हुई। इस सभा में बोलते हुए बासवलिंगप्पा ने मुख्य धारा के कन्नड साहित्य को भूसा कह दिया। इस कठोर वाक्य से कन्नड भाषी संसार में तहलका मच गया। दलित विरोधी भावनाएँ खुल कर सामने आ गई। अस्मिताओं का दबा हुआ सवाल फिर से सतह पर आ गया। जातियों के बीच कटुता खुलकर होने वाले संघर्षों में बदल गई। संस्थाओं में दलितों का विरोध हुआ और उन पर हमले भी किए गए। बासवलिंगप्पा को अपने मंत्री पद से इस्तीफा देने को मजबूर होना पड़ा। दलितों पर होने वाले हमलों का राजनैतिक और वैचारिक स्तर पर मुकाबला करने के लिए ही शिवमोगा जिले के भद्रावती स्थान पर 'दलित संघर्ष समिति' की स्थापना हुई।

'दलित संघर्ष समिति' ने दलित बौद्धिकों और अनपढ़ दलित समाज के बीच संवाद कायम किया। इस समिति के नेतृत्व में पूरे प्रदेश में जात्राएँ आयोजित की गई। दूर दराज के कोलार, चिक्कमंगलूर जैसे क्षेत्रों से राजधानी बैंगलोर की ओर की जाने वाली जात्राएँ एक प्रकार के सांस्कृतिक उत्सव की तरह होती थी। इनमें क्रांतिकारी गीत गाए जाते थे, दलित जीवन की घटनाओं और विषयों पर नाटक खेले जाते थे। इन संघर्षो की रचनात्मक उर्जा से ही कन्नड दलित साहित्य का विकास हुआ। आरंभ में दलित साहित्य की परिभाषा और परिधि को लेकर प्रगतिशील और बंड्या साहित्य से अलगाने का प्रयास किया गया। प्रगतिशील परंपरा सभी शोषित लोगों को दलित मानने का जतन करती थी। दूसरा शूद्र और दलित को लेकर शुरूवाती उहापोह रही। लेकिन दलित साहित्य अपनी प्रेरणा का मुख्य आधार आंम्बेडकर और फूले की विचारधारा को स्वीकार करता है। यह अनुभूति पर बल देता है। ऐतिहासिक सामाजिक दशाओं से उभरी वंचना और अछूतपन की वेदना को अनुभूति देने का कार्य वही कर सकता है जो इन दशाओं से खुद गुजर कर निकला हो। प्रसिद्ध दलित लेखक के लिए प्रगतिशीलता के सरोकार और ऐसे साहित्य की आकांक्षा करता है जो दलित जीवन की मुक्ति का आवाज बन सके। तमाम विवादों के बावजूद यह मानवीयता का अपना आधार बनाता है। यह एक ओर दलित की मानवीय गरिमा की स्थापना करता है। दूसरी ओर शोषक जातियों को उनकी अमानवीयता से भी मुक्त करता है।

12.4 देवनूर महादेव : जीवन परिचय और कृतित्व

देवनूर महादेव का जन्म सन 1949 में कर्नाटक के मैसूर जिले के नंजुगुडा तालुक में देवनूर ग्राम में हुआ था। उन्होंने मैसूर विश्वविद्यालय से कन्नड साहित्य में 1974 में परास्नातक उपाधि प्राप्त की । उन्होंने अपने विद्यार्थी काल से ही साहित्य रचना आरंभ कर दी। 'नर' पत्रिका का संपादन किया । उनकी सात कहानियों का संग्रह सन् 1974 में 'द्यावनूर' नाम से प्रकाशित हुआ । उनके सन 1989 में प्रकाशित 'औडलाळा' के लिए भारतीय भाषा परिषद और कर्नाटक सरकार द्वारा सम्मानित किया गया। उनका उपन्यास 'कुसुमबाले' मिथ और यथार्थ को एक काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास को साहित्य अकादमी का पुरस्कार दिया गया। यह माना जाता है कि देवनूर महादेव ने कन्नड साहित्य में भाषा की नई भंगिमा का विकास किया है।

12.4.1 देवनूर महादेव का भाषा संबंधी दृष्टिकोण

भाषायी साम्राज्यवाद का विरोध देवनूर महादेव के साहित्यिक कर्म का अगला महत्वपूर्ण अंग है। यह भाषा श्रेष्ठता फेरबदल के साथ बहुत कुछ जाति श्रेष्ठता का ही विस्तार है। भारतीय समाज का दुर्भाग्य है कि उसके लिए बोल चाल की भाषा और चिंतन की भाषा में सदा से ही एक फाँक रही है। प्राचीन काल में समूचा अमूर्त चिंतन संस्कृत भाषा में संपन्न किया गया जबकि नाटकों में साधारण जन बोलचाल के लिए प्राकृत भाषा का प्रयोग करते रहे। आज साधन सम्पन्न तबका अपने नौकरों के साथ तो हिन्दी अथवा क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग करता है। मुम्बईया फिल्मों में घर में काम करने वाली बाई जी की भाषा मराठी टोन की होती है, केले का ठेला लगाने वाले भय्या की भाषा गँवारू हिन्दी होती है। लेकिन आभिजात्य की भाषा आज भी अंग्रेजी है। सामाजिक विमर्श की एकमात्र गंभीर पत्रिका 'इकोनॉमी एण्ड पॉलिटिकल वीकली' की भाषा अंग्रेजी है, देश में योजना आयोग के प्रस्तावों की भाषा अंग्रेजी होती है, और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के लिए प्रमाणिक भाषा अंग्रेजी है। यह एक प्रकार का भाषाई साम्राज्यवाद है जिसमें भाषा ही विशेषाधिकार के द्वारा विषमता और भेदभाव का माध्यम बन गई है। अंग्रेजी एक भाषा के रूप में महान भाषा है क्योंकि इसमें आधुनिक युग की उर्जा, लोकतंत्र के चिंतन का स्पंदन मिलता है। लेकिन जब यह भेदभाव का हथियार बन जाय तो इसका विरोध करना जायज है। उच्च शिक्षा और चिंतन की भाषा के रूप में इसके एकाधिकार ने मौलिक चिंतन की संभावना का ही अंत कर दिया है। इसमें हम अपने रोजमर्रा के अनुभव का बयान ही नहीं कर सकते है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में हम गर्मी लगने की भावना दिखा सकते है लेकिन लू लगने की वेदना को अभिव्यक्त नहीं कर सकते है। 'लू लगना' अंग्रेजों के अपने परिवेश के अनुभव जगत का, विषय कभी नहीं रहा। भारत की अथवा कहें कि उष्ण कटिबंधीय मानसूनी जलवायु के तहत ही इसको अनुभूत किया जाता है, भूमध्य सागरीय जलवायु के अंग्रेजों को कभी इसका अनुभव नहीं होता है। अतः उनकी अंग्रेजी भाषा में इस जीवानुभव के लिए शब्द नदारद है। किसी भाषा की शब्दावली का विकास जीवन में भाव भूमि के तहत होता है। शहर में रहने वाले के लिए चावल ही एकमात्र आनुभविक वस्तु है। वहीं किसान के लिए जब यह खेत में खडा है तब धान है खलिहान में जब इससे पुआल फिर भूसी निकालने के बाद जो बचता है वह चावल है। यह चावल जब पक कर थाली में आता है तब यह भात है। एक चावल के लिए शहरी के पास केवल एक शब्द है जबकि किसान के पास इससे जुडे अनेक शब्द हैं। तो भाषा के रूप में जब बोलचाल की भाषा और चिंतन मनन की भाषा के बीच फॉक रहेगी तब तक नवीनता और आविष्कार के लिए कोई गुजांइश नहीं होगी। ऐसे समाज का भविष्य अंधकार से भरा होता है। अकारण नहीं है कि विश्वगुरू कहे जाने वाले इस देश में उच्च शिक्षा को सौ साल से अधिक हो गए है लेकिन आज तक एक मौलिक समाजशास्त्रीय सिद्वांत इस देश की जमीन से विकसित नहीं हो पाया। यही वजह है कि देवनूर महादेव बोलचाल और चिन्तन के बीच मौजूद फर्क को समाप्त करने पर जोर देते हैं। वे कन्नड को केवल बोलचाल की, मनोरंजन की अथवा साहित्य की ही नहीं बल्कि चिंतन–'मनन की और उच्च शिक्षा की भाषा बनाने पर जोर देते है। जब राज्य सरकार ने उनके इस मत को निरंतर उपेक्षा और अवमानना के साथ देखा तो उन्होंने इसका सक्रिय विरोध किया। उन्हें जब 2010–11 में पाँच लाख रूपए का नृपतुंग पुरस्कार दिया गया तो उन्होंने सरकार की भाषा नीति में कन्नड की उपेक्षा पर यह पुरस्कार ठुकरा दिया। वे कन्नड भाषा को केवल आधारभूत शिक्षा और गाने बजाने की भाषा ही नहीं बल्कि उच्च शिक्षा और गहन बौद्विक विमर्श की भाषा बनाने के पक्षधर है। कभी प्रेमचंद ने कहा था कि साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है। साहित्य समाज और राजनीति को मूल्यों के स्तर पर सही रास्ता दिखाने का कार्य करता है। देवनूर महादेव ने इसकों जमीनी स्तर पर हकीकत में उतारा है।

उन्होंने अपनी एक पार्टी 'कर्नाटक सर्वोदय पार्टी' का निर्माण किया। दलितों और किसानों के कल्याण को घोषित रूप से अपनी पार्टी का उद्देश्य बताया। इस पार्टी ने आम चुनाव में कई क्षेत्रों में अपने प्रत्याशी उतारे। हालॉकि इस पार्टी को विशेष सफलता नहीं मिल पाई लेकिन इसके प्रयासों के कारण दूसरों को प्रेरणा और दिशा जरूर मिल गई।

12.5 अमावस कहानी : विषय वस्तु और संवेदना

अमावस कहानी एक आधुनिक कहानी है। इसमें एक ओर किस्सागोई की परंपरा है तो दूसरी ओर यह आधुनिक दृश्यात्मक रूप में भी चलती है। इसमें एक के बाद एक दृश्यों का एक प्रवाह है, एक धारा है। इस धारा में कन्नड लोक जीवन के कई रंग आते रहते है। बस दुख यह है कि सबसे गहरा रंग काला रंग है, अंधेरे का रंग है। यह कहानी अमावस के फलक पर लिखी गई है इसलिए अंधेरा इसका मुख्य विषय है जो कहानी के मुख्य पात्र अमासा का रंग है। वह ग्यारह साल का एक बच्चा है। उसके माँ बाप बचपन में ही गुजर चुके हैं। कहानी अमावस के वर्णन से आरंभ होती है। लेखक अमावस के नामकरण के पीछे कारण का बयान करता है। शायद अमावस के दिन पैदा होने के कारण उसका नाम अमासा है या कह सकते है कि अमावस की रात की तरह काले होने के कारण उसका नाम अमासा है। इस बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि नामकरण के बारे में बताने के लिए उसके माता –पिता जीवित ही नहीं रहे। इस अनाथ को सहारा मिला मारी के मंदिर में। यह मंदिर गाँव के जीवन का केन्द्र है। इस मंदिर में ही अमासा का आसरा है। उसके साथ ही यह कुरियय्या का भी ठिकाना है। अँधेरा और इसका काला रंग कहानी में बार बार आते हैं। अँधेरे की उपस्थिति इतनी सशक्त है कि कई बार उसमें जीवन आ गया है जिसे शास्त्रीय अर्थ में लोग मूर्त हो जाना कहते है। जब अमासा दौड़ने लगता है तो अँधेरा भी गतिशील हो जाता है–''रात जब घिर आती है तो आप उसमें अमासा को भागते नहीं देख सकते हैं। लेकिन अगर अपनी आँखे निकाले तो देख सकते है कि उसके दौड़ने से अँधेरा हिलने लगता है।'' अमासा अगिया बेताल की तरह दौडता है। यह भूख के खिलाफ जिंदगी की दौड थी तो अँधेरे का हिल जाना स्वाभाविक लगता है। अमासा और कुरियय्या का पूरा वजूद इस मारी मंदिर में घण्टी के बजने और खाना मिलने की क्रिया पर ही आश्रित है। यह अलग बात है कि दोनों के उम्र और अनुभव में जमीन आसमान का अंतर है। अमासा ग्यारह साल का बच्चा है। उसके भीतर उर्जा का भंडार है। पूरा जीवन जीने को और पूरी दुनिया हासिल करने के लिए उसके सामने पड़ी है। वही कुरियय्या उम्र के ढलान पर है। उसके बारे में लेखक कुछ इन शब्दों के साथ परिचय देता है–''अमासा के अलावा एक बूढ़ा आदमी भी वहॉ रहता था। वह बहुत बुजुर्ग था। वह इतना बुजुर्ग था कि उसके सिर से लेकर पैर तक के सभी बाल पक कर सफेद हो चुके थे। उसे आज तक किसी ने भी उस कोने से उठते नहीं देखा था जहाँ वह बैठा करता था।'' लेखक ने कुरियय्या का चरित्र कई जटिलताओं के साथ रचा है। कुरियय्या का वजूद केवल उसके पुराने होने तक ही था। वरना उसमें मनुष्य जीवन की क्षमताओं की कोई हलचल दिखाई ही नहीं देती है। इसलिए लेखक उसके बारे में बात करते हुए कम्बल के बारे में बात करता है। कम्बल की विशेषता केवल इतनी है कि वह बहुत पुराना है। कितना पुराना ? कुरियय्या के उम्र की तरह कम्बल के वजूद का भी कुछ पता नहीं। कम्बल और उसमें एक और समानता रंग की है। दोनों का रंग काला है। लेखक उसके नामकरण की ओर मुड़ता है। उसका नाम 'कुरि' अर्थात बकरीयाँ चराने वाला के अनुसार है। उसने बकरियाँ चराना तो छोड़ दिया है। लेकिन बकरियों ने शायद उसे अभी नहीं छोड़ा है। आज भी अचेत दशा में वह अपनी बकरियों को उँगली पर गिनता रहता है।

इस दृश्य के बाद मन्दिर का दृश्य आता है। मंदिर गाँव के लिए सांस्कृतिक केन्द्र का काम करता है। यह संस्कृति के निर्माण और संचालन का केन्द्र है। यह संचालन विधि विधानों के अलावा उत्सवों के माध्यम से किया जाता है। मारी उत्सव के आगमन से मंदिर का आँगन जीवंत हो उठता है। उत्सव के लिए साफ सफाई की व्यवस्था की जा रही है। मंदिर एक बार फिर से काया पलटने के लिए तैयार है। अब कुरियय्या की दशा नहीं बदलेगी बस उसका स्थान बदल गया। गाँव के सफाईकर्मी बसण्णा को इस बदलाव का अभ्यास है, तभी वह उसे धीरे से बाबा कहकर बुलाता है। लेकिन कुरियय्या सामने सफेद कपड़ों में लोगों को देखते देखते पुरानी यादों में खो जाता है। कहानी फ्लेशबैक में चली जाती है। कई साल पहले का किशोर कुरियय्या सामने आ जाता है। वह शेर का स्वांग रच कर नाच रहा है। उसके नाच पर सभी लोग मुग्ध है। गाँव के मुखिया 'बडे गौडा' उसे अपने पास बुलाते हैं। वह उनके यहाँ पेट भर खाने और तन ढकने की सुविधा मात्र पर भेड बकरियाँ चराने लगता है। आर्थिक शोषण की यह बेलगाम छँट है, जो जाति और कर्मफल के ढाँचे में बहुत सहजता से न्यायोचित बनाकर फिट हो जाती है। बसण्णा के दुबारा आवाज लगाने पर कुरियय्या की चेतना फिर से वर्तमान में वापस आ जाती है। लेकिन अतीत और वर्तमान कहानी में एक दूसरे को काटते हुए चलते हैं। वर्तमान में मंदिर में मारी उत्सव के आयोजन का उत्साह है। झाड़ पोंछ कर मंदिर के पुराने रूप को नया बनाया जा रहा है। लेकिन कई चीजें है जिनमें कोई बदलाव नहीं आया है। नारियल का पेड़ इस बदलाव से अछूता है। वह मंदिर को बूढ़े कुरियय्या की देन है। उसे उसने लगाया था कि नारियल के बहाने ही दुनिया में उसका एक नाम रह जाएगा।

बूढ़ा कुरिय्या अतीत में डूबा है लेकिन अमासा अपने वर्तमान के उत्सव को लेकर बहुत उत्साहित है। वह तैयारी के हर कार्य में या तो शामिल है और नहीं शामिल है तो उसमें बहुत रूचि और जिज्ञासा दिखाता है। जब बसण्णा अपने ढोल की आवाज निकालता है तो अमासा अपने आप को रोक नहीं पाता है। उसके कदम थिरकने लगते है और नृत्य में शामिल हो जाता है–'' उसकी ध्वनि गाँव में गूजने लगी। चारों ओर से घेरे हुए बच्चे नाचने लगे। बसण्णा नाचने लगा। बच्चे भी उसके कदमों का साथ देने लगे। अमासा को पता नहीं किसने सिखाया था ... उसके पैर बहुत सही पड़ रहे थे। सब हैरान होकर 'वाह वाह' कर उसी की ओर देखे जा रहे थे।'' कुछ पल के नृत्य में वह उस स्वतंत्रता को जी लेता है जो उसे अपनी जिन्दगी में नसीब नहीं हुई। उसके अंदर का प्राण नाच उठता है जिसकी लय दर्शकों को भावनाओं में डुबो जाती है। उसके नृत्य ने दर्शकों के मन की गाँठ को खोल दिया है। उसका नाच देखने बंगारी उसके नृत्य को देखकर भाव विभोर हो उठी । इसके कारण बच्चे के लिए उसके मन में चाहत का बाँध मानों टूट पड़ा। उसके भावना में बह चली और एक स्तर पर अमासा से जुड़ जाती है। जिस काल में स्त्री का महत्व केवल सन्तान पैदा करने तक सीमित था, उसमें इस शर्त को पूरा न कर पाने वाली स्त्री की समाज क्या दशा करता होगा, इसकी कल्पना ही सिहरन पैदा कर देती है।

मारी का त्योहार धीरे धीरे अपने पूरे उभार की ओर आगे बढ़ता है। अब दो बकरे लाए जाते हैं और उन्हें माला पहिनाई जाती है। पुजारी अपने मंत्रों और विधि विधान से उन्हें पवित्र करता है। कसाई उनकी गरदनें अलग कर देता है। इस बीच एक लड़का बकरे के खून से सनी माला लाया। उसने यह माला मजाक में ही अमासा के गले में डाल दी है। इस अप्रत्याशित घटना से अमासा दशहत में आ गया। त्यौहार की यह रात उसके लिए खौफ की रात बन जाती है। इस रात में रेलवे गैंगमैन सिद्वप्पा शराब पीकर अपने होशो हवास खो देता है। वह नेता, अधिकारी, सूदखोर और ठेकेदारों को गालियाँ देता है। इस दशा में वह सत्ता और व्यवस्था के विरूद्व विद्रोह का आवाहन करता है। लेकिन यह विद्रोह शायद नशा उतरने के बाद स्वयं शांत हो जाने वाला था । अतः स्थितियों में इस विद्रोह से कोई अंतर नहीं आता है। अगले दिन स्वाँग करने का दिन था। अमासा

शेर के बच्चे का स्वाँग धर कर नाचता है। भूस्वामी गौडा भी उसका नाच देखता है। उसकी पहचान के बारे में पता चलने पर वह कहता है कि अरे! यह तो बड़ा हो गया है अर्थात उसके यहाँ बेगारी करने लायक हो गया है। कई साल पहले उसके बाप 'बड़े गौडा' ने इसी तरह कुरियय्या को भी शेर के स्वाँग में देखा था। उसी दिन से वह चाकर बन गया। जीवन भर इस गुलामी से उसे मुक्ति नहीं मिल पाई। आज वहीं बात अमासा के साथ दोहराई जाने वाली है। इसका संकेत देते हुए कहानी समाप्त हो जाती है।

12.5.1 अमावस : सामाजिक आर्थिक दबाव और शोषण के संदर्भ

अमावस कहानी में दृश्यों का प्रवाह है। घटनाओं का कहीं सिलसिलेवार निरूपण नहीं है। इसके बावजूद कहानी पाठक के मन पर गहरा असर क्यों डालती है? लेखक ने कहीं भी जाति शोषण का नाम नहीं लिया है लेकिन दृश्यों के बीच ही विषमता के द्वारा जाति की विषमता को उभार दिया है। कहानी में एक ओर उत्सव का माहौल है, तो दूसरी ओर कुरियय्या की दुर्दशा और अमासा के भविष्य का अंधेरा है। दोनों ही जाति व्यवस्था के द्वारा खोखले हो चुके है अथवा किए जाने वाले है। जाति व्यवस्था एक प्रकार के आर्थिक शोषण की बेपनाह छूट है। इसमें शोषित होने वाले के पास बचाव का कोई उपाय नहीं है। कानून उसकी रक्षा करने के लिए नहीं आता है क्योंकि ऐसा कोई मानवीय कानून हिन्दू धर्म में मौजूद ही नहीं है। समाज उसके बचाव में नहीं आता क्योंकि इस शोषण को धर्म के द्वारा सामाजिक मान्यता मिली हुई है। कहानी के आरंभ में ही दिखाया गया है कि कुरियय्या बचपन में ही भूस्वामी 'बड़े गौडा ' के द्वारा नौकर के रूप में अपना लिया जाता है। एक बार इस गुलामी में फँसने के बाद उसके जीवन का कोई निस्तार नहीं होता है। उसकी जिंदगी मालिक की बकरियों को चराने में ही बीत जाती है। हिन्दू धर्म में व्यक्ति के जीवन में चार फल – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष बताए गए है। लेकिन समस्या यह है कि यह धर्म उपर की जातियों को छोड़ कर शूद्रों और दलितों को शायद मनुष्य स्वीकार ही नहीं करता है। तभी कुरियय्या के जीवन में मालिक की बकरियाँ ही धर्म है, काम है, अर्थ है और मोक्ष भी है। ''जब से लेकर उसे समझ में आया तब से जँघों की शक्ति खत्म होने तक वह गौडा की बकरियाँ चराया करता था। आज भी वह जब अधमुँदी आँखों से अपनी अँगुलियाँ गिनने बैठता है तब लगता कि एक उँगली एक बकरी है। दिन में बिना नागा वह पाँच छह बार ऐसा करता है।'' उम्र ने जब तक साथ दिया तब तक वह काम करता है। अशक्त होने पर उसने बकरियों को चराना छोड़ दिया। लेकिन बकरियों ने उसका पीछा अभी नहीं छोड़ा है। वे अभी भी उसके सपनों में आती है। यह गुलामी, जाति की गुलामी है जिसमें गुलाम का निस्तार नहीं है। वह जाति की जजमानी में फँसा हुआ है, इसमें उच्च जाति की सेवा करते जाना ही नियति है।

कहानी में कहीं भी अमावस और कुरियय्या की जाति का उल्लेख नहीं है लेकिन जिन दशाओं में वे जी रहे हैं, वे शांति भरी चीख के साथ उनके दलित जीवन की ओर संकेत कर रहीं हैं। दलित समाज के श्रम को मान्यताओं ने खुला छोड़ रखा है। अर्थशास्त्र में सेवा का उसके स्वरूप के साथ विनिमय मूल्य होता है – शोषण। लेकिन पूर्व जन्म के पाप का दाग किसी पर लग गया तो कैसी सेवा और कौन सा मूल्य? कहानी में कुरियय्या और अमासा दोनो ही एक दूसरे के पूरक लगते हैं। कुरियय्या एक जीवन जी चुका है और अमासा के रूप में वह अपने आप को देखता है। अमासा का जीते जाना वास्तव में उसके जीवन को दोहराना है। कहानी के अंत में बड़े गौडा का लड़का 'गौडा' भूस्वामी के रूप में आता है। वह ग्यारह साल के बच्चे को शेर का स्वांग करते हुए देखता है तो आश्चर्य में पड़ जाता है और जब उसे मालूम होता है कि बच्चा और कोई नहीं अमासा है, वह खुश हो जाता है। आखिर उसे पेट भर खाने पर उम्र भर काम करने वाला गुलाम मिल गया।

कहानी में पाठक को दो पीढ़ियों का इस प्रकार शोषण के चंगुल में फँसते जाना आहत करता है। आखिर मारी और कुरियय्या जैसे व्यक्ति विद्रोह और प्रतिरोध नहीं करते हैं। यही नहीं जब कुरियय्या अपने पुराने जीवन को याद करते समय अपने मालिक 'बड़े गौडा' का उल्लेख करता है तब उसमें कोई शिकायत का स्वर भी नहीं सुनाई पड़ता है। जाति व्यवस्था ने अपनी गुलामी को सहनीय बनाने के लिए धर्म की अफीम का सहारा लिया है। उसने धर्म की व्यवस्था में कर्मफल और आत्मा जैसे विचारों को दलित और शूद्र समाज के संस्कारों का अंग बना दिया है। निम्न जातियों कोमें अपनी जाति के नाम से ही हीनता का बोध भर दिया गया है। ऐसे ही धार्मिक संस्कार में रचा बसा कुरियय्या अपने शोषण को शायद अपनी नियति मान कर स्वीकार करता है। अपनी गुलामी के लिए रोश में आने के बजाय वह बड़े गौडा का एक प्रकार से अहसान मंद दिखता है। पूरी कहानी में गैंगमैन सिद्दप्पा ही धार्मिक संस्कारों के विरोध में दिखता है।

12.5.2 विद्रोह का स्वरूप

कहानी पढ़ने के बाद इसके पात्रों की निरीह दशा पाठक को आश्चर्य मे डाल देती है। इनके बीच में विद्रोह की एक चिंगारी भी उपस्थित है। सिद्दप्पा के द्वारा यह कार्य व्यक्तिगत रूप से संपन्न होता है । गाँव में सरकारी नौकरी करने के कारण उसमें ही विद्रोह करने की शक्ति भी है। लेकिन यह विद्रोह बहुत निरीह लगता है क्योंकि यह अकेले का विद्रोह है, व्यक्तिगत विद्रोह है। किसी सत्ता के लिए इकलौते विद्रोह से निपटना कहीं आसान है। डॉ. आंबेडकर ने अपने अनुयायियों से इसीलिए कहा –''शिक्षित बनों, संगठित बनो और संघर्ष करों''। संगठित होने के लिए उन्होंने शिक्षा की आवश्यकता बताई, अन्यथा शिक्षा के अभाव में संगठन एक मूल्य विहीन झुंड मात्र के समान होगा। अगर वह अपने लक्ष्य के लिए कठोर हिंसा का सहारा लेगा तो वह डाकुओं के गिरोह के समान होगा। कहानी में सिद्दप्पा का विद्रोह संगठन की शक्ति के अभाव में ही निरीह लगता है। जाहिर है कि उसमें राजनैतिक चेतना का अभाव है। उसे समाज में विषमता ही सबसे दर्दनाक लगी। यही कारण है कि वह नेता, ठेकेदार और सूदखोरों को भर कर गालियाँ देता है–

''वह उस खंभे को राजनीतिज्ञ, नेता, ठेकेदार, रेलवे बॉस समझ कर, इकन्नी रूपए सूद पर देने वाला मादप्पा समझ कर, 'हत हरामजादे सफेद कपड़े पहन कर देश का बड़ा नेता बन रहा है। हमे देखकर नाक भौ चढ़ाता है। हम तो अनाथ है, जहाँ वहाँ रास्ते में पड़े रहते है।''

चेतना अपने विकास के चरण में राजनैतिक रूप अख्तियार कर संगठन की ओर बढ़ती है। सिद्वप्पा में विरोध की चेतना है लेकिन वह विकसित होने की ओर नहीं है। उसकी राजनैतिक चिन्तन धारा कम्युनिस्ट पार्टी की ओर बढ़ती है। गाँव में जुल्म की इबारत जाति की दीवार पर लिखी गई, वर्ग की रचना पर नही। सो उसकी चेतना का झुकाव जाति भेद के विरोध की ओर जाना चाहिए था, वर्ग भेद के विरोध की ओर नहीं। गाँव की भेदभाव संस्कृति में सभी प्रकार के भेदभाव है, बस वर्ग का भेदभाव नहीं क्योंकि वर्ग इस प्रागैतिहासिक आभास के गाँव में किसी के बोध का अंग नहीं है। यही नहीं भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के नीति चिंतन काल में लम्बे समय तक जाति कभी विश्लेषण का विषय ही नहीं बनी। अकारण नहीं है कि डॉ. आंबेडकर ने इस पार्टी की जाति जड़ता का विरोध किया था। इसीलिए इस क्लासिकल आभा की उत्कृष्ट कहानी में केवल सिद्दैय्या का प्रसंग ही बनावटी लगता है। वह गॉव के सामूहिक बोध में कहीं भी फिट नहीं बैठता है। लेकिन वह चरित्र अपनी असफलता के बावजूद कहानी में प्रभाव छोड़ जाता है। क्या यह ट्रेजडी नहीं है कि कहानी की मूल प्रेरणा की बातें, सबसे समझदारी की बातें जो शख्स कह रहा है, वह पूरी तरह से शराब पी कर खुद अपने होशो हवास

में नहीं है। शायद होशो हवास में रहता तो वह ऐसी बातें करता ही नहीं। गाँव की जाति सत्ता किसी विरोध को सहन करने अथवा उपेक्षित करने की आदी नहीं है।

12.6 अमावस : भाषा और प्रतीक

अमावस कहानी में लेखक का ध्यान मुख्यतः विषय के बयान पर है। इस बयान की प्रामाणिकता इसकी भाषा में है। दलित जीवन को व्यक्त करने वाले दलित कथाकारों ने नितांत भिन्न भाषा को अपनाया है। इस भाषा की अभिव्यक्ति में शोषण और दमन के गहरे रंग मिलते है। दलित साहित्य के उपर बात करते हुए यू. आर. अनन्तमूर्ति ने एक सवाल उठाया –''जब अपमानित व्यक्ति स्वाभिमानी बन जाता है तो उससे निर्मित साहित्य की अपनी एक विशेषता होती है। हम उसे प्रतिरोधी साहित्य कहते है। अवधारणा और विषय वस्तु की दृष्टि से इस प्रकार का साहित्य पाठक को तुष्टि देने से कतराता है।'' लेकिन देवनूर महादेव की कहानियाँ पर यह बात लागू नहीं होती है। उनके पाठकों की भारी संख्या इस बात का प्रमाण है कि वे देवनूर के प्रतिरोध और तेवर से संतुष्ट है। इस तुष्टि का कारण देवनूर की भाषा है। वैसे तो सभी दलित साहित्यकार दलित जीवन के अनुभव को दिखाते हैं लेकिन देवनूर का अंदाज ए बयान दूसरों से अलग है। गालिब के शब्दों में कहें–

''कहते हैं कि है बहुत सुखनवर और भी कई बेहतर
मगर गालिब का अंदाज ए बयॉ ही कुछ और ''

देवनूर महादेव की भाषा का अंदाज ही अनोखा है। उन्होंने दलित जीवन की भाषा की सर्जनात्मक शक्ति को उभारा है। दलित जीवन की भाषा दूसरे से अलग किस प्रकार होती है? इसे हम हिन्दी के अपने वाक्यों के उदाहरण से समझ सकते हैं–

- तुमने मेरे दस रूपए का नुकसान कर दिया ।
- तुमने मेरे दस रूपए व्यर्थ करवा दिए ।
- तुमने मेरे दस रूपए का खून करवा दिया।

इसमें पहले दो वाक्य व्याकरण की दृष्टि से सही है लेकिन उनकी भाव धारण करने की क्षमता कम है। लेकिन तीसरे वाक्य ने दस रूपए से जुड़ी भावनाओं का अम्बार भर दिया है। यही दलित जीवन की भाषा का मिजाज है। जब जीवन में साधन का अभाव होता है तो उसकी भरपाई भावनाओं की संपन्नता से की जाती है। दलित जीवन भावनाओं से भरपूर होता है। इसी कारण जब दलित लेखक आत्मकथा लिखता है तो उसका जीवन बयान संघर्ष और शोषण के दृश्यों के बावजूद पाठक के लिए साहित्य बन जाता है। देवनूर महादेव की भाषा ने इस मिजाज को पकड़ा है। उन्होंने कन्नड की मानक भाषा के साथ दलित जीवन की अपनी भाषा का संतुलन साध लिया है। उनकी इस विशेषता पर जी.एच. नायक कहते हैं–''कुछ अंशों में तेजस्वी और देवनूर की कहानियों में एक साम्य दिखाई पड़ता है। लेकिन महादेव ग्राम्य भाषा का कथा के निरूपण की भाषा के रूप में प्रयोग करने के साथ साथ यह भी स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं कि इस भाषा में भी अभिव्यक्ति की शक्ति है।'' यहाँ ग्राम्य भाषा के प्रयोग से संदेह हो सकता है। वास्तव में ग्राम्य भाषा में भी सामाजिक बनावट के अनुसार टोन के अलग अलग स्तर होते है। जैसे रेणु की कथा भाषा में गाँव के पटवारी और बैलगाड़ी के गाड़ीवान की भाषा का बाहरी रूप एक समान होने पर भी उनकी टोन अलग है। कुछ ऐसा ही कौशल देवनूर महादेव को सिद्ध है।अमावस कहानी में पात्रों के अनुरूप भाषा के कई स्तर दिखाई पड़ते हैं।

कहानी में सारगर्भित प्रतीक है। यह प्रतीक ही विवरण को विश्लेषण की ओर ले जाते हैं। बकरों की बलि के प्रसंग में खून से सनी माला अमासा के गले में डाल दी जाती है। यह

इस बात का संकेत है कि आगे होने वाली बलि का बकरा वहीं है। फर्क इतना है कि उसकी बलि कसाई नहीं गौंडा के द्वारा चढ़ाई जाएगी। इसी नारियल का पेड़ एक प्रकार से कुरियय्या से जुड़ता है। उसने भी सदा ही गौडा परिवार के लिए फलदार पेड़ का काम किया है। इनके बदले उसे कुछ भी नहीं मिला है। कहानी के अंत में गौडा परिवार का नौकर पेड़ से बाकी बचे फल तोड़ कर ले जाता है। इसी प्रकार अमावस का काला रंग भी कई स्थानों पर प्रतीक बन कर आया है। काला रंग दुर्भाग्य का और दमन का रंग है।

12.7 मोची की गंगा : विषय वस्तु और संवेदना

शमोगली गणे एक संघर्षगामी लेखक है। 'बुगुरी' इनका पहला कहानी-संग्रह है। देवनूर महादेव, बागूर रामचंद्रप्पा द्धंदूधर होन्नापुर, चेन्नयपा वालीकार तथा म.न. जवरय्या की कहानियों में दलितों के शोषण के बिंदुओं को तथा उस शोषण के खिलाफ खड़े होन वाले दलित युवा-पीढ़ी का चित्रण है। बरगूरू रामचन्द्रप्पा की कहानियों में महाजनी सभ्यता में कैसे दलितों का अर्थिक तथा यौन शोषण किया जाता है इसकी अभिव्यक्ति मिलती है। लेकिन देवनूर महादेव की कहानियाँ इस दृष्टि से भिन्न हैं। 'डांबरू आया' 'आभास ' 'दावनूर' आदि कहानियों में दलितों के शोषण का चित्रण दूसरे स्थान पर है तथा दलित पात्रों की अंदरूनी दुनिया में होनेवाले उथल-पुथल का चित्रण पहले स्थान पर है। मोगली गणेश ने देवनूर महादेव की इस प्रवृत्ति को अपनी कहानियों में विकसित किया है। देवनूर महादेव की कहानियों के पात्रों की अंदरूनी-दुनिया में अपनी गरीबी तथा लाचारी का चित्रण है तो मोगली गणेश की कहानियों में गरीबी तथा लाचारी के चित्रण के साथ-साथ एक सामाजिक विस्फोट भी है। इनकी कहानियों में हिंदू समाज तथा भारतीय परिवेश के प्रति एक आक्रोश तो जरूर है तथा इस आक्रोश को अभिव्यक्त करने की शैली कलात्मक एवं नवीन है। मोगली गणेश की कहानियों के पात्रों के स्वभाव एवं परिवेश की अभिव्यक्ति पाठक को आकर्षित करती है। इस तरह मोगली गणेश कन्नड-कहानी-परंपरा एवं दलित-कहानी-परंपरा से जुड़े भी है तथा अपने विशेष गुणों के कारण अलग भी हैं। उनकी 'मोची की गंगा' इसी संदर्भ में महत्वपूर्ण कहानी है।

12.8.1 'मोची की गंगा' कहानी की पृष्ठभूमि

भारतीय पुराण एवं इतिहास के साथ दलितों का अटूट संबंध है। आज दलित समाज के हाशिये पर पड़े हुए हैं। लेकिन एक जमाने में वे इस जमीन के मूल निवासी थे तथा शासक भी थे। दलित समाज इस देश के कण-कण के साथ अपना रिश्ता रखता था, जिसके कारण से उनकी अपनी सांस्कृतिक विरासत है। 'मोची की गंगा' दलितों की अपनी इस निजी विरासत से जुड़ी कहानी है। गंगा नदी के साथ भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता एकाकार हो गयी हैं। गंगा केवल एक नदी नहीं भारतीय सभ्यता का मूल स्रोत है। दलित भावनात्मक रूप से गंगा के साथ एकाकार हैं। दलितों की इस भावना के रेशे-रेशे को अभिव्यक्ति देने में 'मोची की गंगा' सार्थक कहानी है। दलित लोग 'गंगा' को केवल अपनी माती ही नहीं अपनी बेटी मानते हैं। वे स्वयं गरीब हैं लेकिन अपनी बेटी के प्रति उदार हैं। गंगा एवं दलितों का यह सांस्कृतिक संबंध ही कहानी की पृष्ठभूमि है।

हमारे देश में गंगा को लेकर अनेक पुराण कथाएं प्रचलित है। जानी मानी पुराण कथा यह है कि - वह शिव की पत्नी है, शिव ने उसे अपनी जटा पर धारण कर लिया था। धरती की प्यास बुझाने के लिए मुनि भगीरथ ने शिव की जटा से उतारकर गंगा को धरती पर लाया था। लेकिन इस कहानी में गंगा का स्वरूप कुछ अलग है। गंगा यहाँ शिव की पत्नी नहीं, देविस्वरूपिणी नहीं, बल्कि एक साधारण, गरीब, चिथड़ों से लदे मोची की बेटी है। बूढ़ा मोची अपनी बेटी गंगा को हल्दी, कुमकुम, पान सुपारी देने की प्रबल इच्छा रखते हुए

भी गंगा तक जाने की शक्ति नहीं रखता। इसलिए काशी जानेवाले जजमान को हल्दी, कुमकुम और पान सुपारी देकर अपनी बेटी गंगा को देने की प्रार्थना करता है। जजमान काशी से वापस आते वक्त, बस कौतूहल वश नदी के किनारे खड़े होकर तीन बार गंगा को पुकारता है तो दो सुंदर हाथ ऊपर आते हैं और बूढ़े मोची ने दिये हुए हल्दी, कुमकुम, पान सुपारी स्वीकारते हैं। इस बीच जजमान उन दोनों हाथों में से एक रत्न जड़ित कंगन चुरा लेता है। यह वर्तमान और फैंटसी का मिला–जुला पहला आयाम है।

दूसरे स्तर पर चुराये गये कंगन बेचकर जजमान मालामाल होना चाहता है। इस कंगन की दैवी सुदंरता कानों कान, चारों दिशाओं में फैल जाती है और उसे देखने के लिए लोगों का समुंदर उमड़ पड़ता है। लोगों की बातों से प्रभावित होकर बूढ़ा चमार अपनी शक्ति बटोरकर कंगन देखने आता है तथा उस दैवी कंगन को देखकर चिल्ला पड़ता है कि - यह मेरी बेटी का कंगन है। चिथड़े में लथ-पथ इस बूढ़े की बात सुनकर लोग ठहाके मारते हैं। कहते हैं कि यह पगला है। कुछ लोगों को गुस्सा भी आता है कि जान बूझकर यह कंगन के नीलामी में बाधा डालना चाहता है, इसलिए उसे लात भी मारते हैं। लेकिन बूढ़ा टस से मस नहीं होता। बूढ़े को कड़ी सजा देने की बात चलती है। लेकन बूढ़े की बातों पर रहम कर उनके पास होने वाले दूसरे कंगन देखने चले जाना तथा खाल भिगोने के लिये रखी माटी की हांडी में गंगा का प्रत्यक्ष होना तथा गंगा के देव स्वरूप के सामने लोगों को आँख अंधेरे में रह जाना एवं लोगों द्वारा अविश्वास करना, दूसरी बार गंगा को बुलाना और गंगा का बाढ़ बनकर उग्र रूप धारण कर आना आदि सब पुराण और फैंटसी का दूसरा स्तर है।

12.7.2 सांस्कृतिक विरासत और समकालीनता

मोची की गंगा कहानी में गंगा और मोची के पिता-बेटी के रिश्ते को फैंटसी के रूप में बताया है। इसक द्वारा वर्तमान-स्थिति की अभिव्यक्ति अपने आप होती है। पाठक के सामने दलितों की सांस्कृतिक विरासत अपने आप खुल जाती है तथा दलितों को किस तरह अपनी संस्कृति से अलग किया गया तथा उनके सांस्कृतिक-रिश्तों को संशय की दृष्टि से देखा गया है, इसका सजीव चित्रण कहानी में मिलता है।

मोची की गंगा कहानी में बूढे मोची की स्थिति एवं गति के माध्यम से दलितों की स्थिति एवं परिस्थिति का परिचय दिया गया है। दलितों की संस्कृति, उनका इतिहास यहाँ गंगा, मोची के रक्त संबंध के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। एक जमाने में दलित यहाँ के संस्कृति के प्रतिनिधि थे, लेकिन बाहर से आये हुए लोगों ने उसे अपनी संस्कृति से अलग किया। यदि दलित अपनी सांस्कृतिक विरासत की बात करता है तो कोई उस पर विश्वास नहीं करता क्योंकि वह जो अपनी वैभवपूर्ण-सांस्कृतिक परंपरा की बात करता है उसके साथ आज की उनकी हालात मेल नहीं खाती। वह कहता है गंगा उनकी बेटी है लेकिन उनकी फटीचर अवस्था को देखते हुए संशय की दृष्टि से देखना स्वाभाविक है।

बूढ़े को भीड़ मार–मार कर अधमरा कर देती है, खून बहता है, मांस मज्जा मिट्टी में मिल जाते हैं, और बूढ़े के खून एवं मांस-मज्जा से पेड़-पौधों को खाद्य मिलता है। उनमें फल-फूल होने लगते हैं। कहानी का अंतिम अंश यह प्रतिपादन करता है कि दलितों को जितना भी प्रताड़ित किया जाए, वह इस समाज की भलायी ही चाहेगा। कभी नुकसान नहीं पहुँचायेगा। कहानी का यह प्रतिपादन ही उसकी समकालीनता का प्रतीक है।

12.8 मोची की गंगा : भाषा और शिल्प

'मोची की गंगा' भारतीय परंपरा को साथ लेते हुए उनमें नया अर्थ एवं प्रतिबिंब को खड़ा करनेवाली कहानी है। इसमें केवल दो पात्र हैं - एक बूढ़ा चमार और काशी जानेवाला

जजमान और एक पात्र गंगा है जिसका कहानी में शुरूआत से अंत तक प्रभाव है। गंगा कहीं दिखायी नहीं देती लेकिन कहानी का मूल स्रोत वही है। पुराण और समकालीनता को फैंटसी के माध्यम से कहानीकार ने ऐसे जोड़ा है कि पाठक को लगता है कि वह खुद कहानी के सभी दृश्यों को देख रहा है। कभी-कभी पाठक बूढ़े चमार की जीवंतता में एक हो जाते हैं। गंगा और चमार के संबंध के चित्रण में कहानीकार ने एक ऐसी अनोखी शैली को अपनाया है कि बाप-बेटी के रिश्ते को पाठक नकार नहीं सकता। मानव मन की दुर्दशा का एक ऐसा चित्र यहाँ खड़ा किया गया है कि पुण्य कमाने काशी गये जजमान पाप ढोकर घर आता है। कहानीकार ने घटना एवं परिवेश के ताने-बाने ऐसे बुने हैं कि दोनों एक दूसरे के पूरक है।

इस कहानी में गंगा एवं बूढ़े मोची के भावात्मक संबंध के माध्यम से वात्सल्य की कोमल भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है। वात्सल्य की अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए कहानीकार मोगली गणेश ने बड़ी सावधानी से शब्दों का चयन किया है।

पुराण एवं फैंटसी के माध्यम से कहानी की घटनाएँ घटित होती हैं। कहानी में पौराणिक संदर्भ होने के कारण कहानीकार ने ऐसे शब्दों का चयन किया है जो बोल-चाल में प्रचलित हैं। दलितों के बोल-चाल में जैसे देशीपन होता है तथा देशीपन के कारण जो भाषाई ताजगी होती है, कहानीकार ने इस ताजगी को पूरी कहानी में बनाए रखने में सफलता हासिल की हैं।

दलितों की सेवा, मनोभावना तथा उसके प्रति कुछ भी न माँगने के स्वभाव को, जजमान के फटीचर जूतों को सिर से लगाकर नमस्कार करने के मोची के सात्विक स्वभाव के बारे में कहानीकार ऐसे वर्णन करते हैं कि 'उसने समझ लिया था कि मनुष्य की ऐडियों को ढोने वाले इन जूतों में अपने पूर्वजों की आत्मा रहती हैं।' केवल इस छोटे से वाक्य से पूरी दलित संस्कृति का स्वभाव, उनके विश्वास, रीति रिवाजों का अनावरण होता है। कहानीकार मोगली गणेश की भाषा जीवन के अनेक रंगों को हमारे सामने बिखेरती है।

11.8 सारांश

देवनूर महादेव की 'अमावस' कहानी गहन वेदना को शांत रूप से दर्शाने वाली कहानी है। यह अपने छोटे कलेवर में बहुत बड़ी बात कह जाती है। इसमें जाति प्रथा की क्रूरता को दिखाया गया है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी बिना किसी बदलाव के चली आ रही है। कुरियय्या के जीवन को जाति प्रथा की जजमानी ने गुलाम बना दिया है। उसने पेट भर खाने के बदले अपना पूरा जीवन भूस्वामी की सेवा में लगा दिया। अमासा अगली पीढ़ी का लड़का है। वह अपने भविष्य से बेखबर होकर त्योहार को पूरी उमंग और उत्साह के साथ जी रहा है। भूस्वामी गौडा ने अपने गुलाम के रूप में उसकी तकदीर तय कर दी है। यह उसके जीवन की सभी संभावनाओं के अंत का दिन है। किशोर अमासा खुशी में नाचता जा रहा है, जबकि उसका भविष्य उसके नाम की तरह अंधकारमय होता जा रहा है। यही कहानी का अंत और त्रासदी का बिन्दु है। मोगली गणेश 'मोची की गंगा' कहानी में पौराणिक संदर्भों द्वारा वर्तमान दलित जीवन की विडम्बनाओं को उजागर करते हैं। दलितों की सांस्कृतिक विरासत को समकालीन संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं। इस कहानी में पौराणिकता, फैंण्टेसी और समकालीन यथार्थ का अद्भूत समन्वय है। अतः इन दोनों कहानियों का अध्ययन करने के बाद आप कन्नड दलित कहानी का संवेदना और शिल्पगत विशेषताओं को समझ गये होंगे। दोनों कहानियों में दलित जीवन की जीजीविषा और व्यथाओं को सार्थक संवेदना एक ओर सांस्कृतिक–सामाजिक जीवन का अन्वेषण करती है, तो दूसरी ओर दलितों के शोषण एवं उत्पीड़न को दर्शाया गया है। इसे कन्नड़ दलित कहानी के महत्व को रेखांकि करते समय ध्यान में रखना आवश्यक है।

इकाई 13 'हड्डा रोडी और रेहडी' और 'बिच्छू'

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 'हड्डा रोडी और रेहडी' की कथावस्तु

13.3 हीनता बोध से मुक्ति की छटपटाहट

13.4 आर्थिक शोषण में जाति संरचना की भूमिका

13.5 अतरजीत की कहानी 'बिच्छू' का पाठावलोकन

13.6 रोजगार की तलाश और हताशा

13.7 अस्मिता का संघर्ष

13.8 व्यक्ति की पहचान का निर्धारण आर्थिक स्थिति से अधिक जाति स्थिति पर निर्भर

13.9 निम्नताबोध से बौना होता व्यक्तित्व

13.10 सारांश

खंड के प्रश्न

कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

खंड 1 की तीसरी इकाई पंजाबी कहानीकार गुरमीत कडियालवी कहानी 'हड्डा रोडी और रेहडी' तथा अतरजीत की कहानी 'बिच्छू' पर आधारित है। पंजाब जैसे समृद्ध प्रदेश में जाति व्यवस्था के भीषण स्वरूप पर दोनों कहानियों आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करती है। जातिप्रथा ने दलितों को जीन जघन्य अमानवीय कामों से जोड़ दिया और वह करने की पाबंदी भी लगा दी थी उस कार्य में मुर्दार जानवरों को उठाकर रेहडी में रखकर गांव के सीमा पर फेंक आने जैसा अत्यंत घृणित और मलीन काम करने की दलित समुदाय पर धर्म द्वारा थोपी गई थी। प्रस्तुत दोनों कहानी के अध्ययन के बाद आप परिचित हो सकेंगे;

- घृणित माने गए कामों को करने की दलितों पर धर्म और सवर्ण समुदाय द्वारा पाबंदी से ;
- आर्थिक शोषण में जाति संरचना की भूमिका से;
- शिक्षित दलित वर्ग में अतीत के कारण उत्पन्न हीनता बोध से;
- दलित जीवन से जुड़ी उन यातनामयी यादों को नष्ट कर हीनताबोध से मुक्ति की आकांक्षा से ;
- दलित शिक्षित वर्ग में जाति की पहचान छुपाने की प्रवृत्ति से; और
- व्यक्ति पहचान जाति श्रेणी पर निशिचित है आर्थिक स्थिति पर नहीं, इस तथ्य को समझ सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

दलित-साहित्य के संदर्भ में यह टिप्पणी सर्वमान्य है कि इस साहित्य व चिंतन का उद्देश्य देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों में आमूल-चूल परिवर्तन लाना है। यह टिप्पणी इसलिए व्यवहारिक मानी जा सकती क्योंकि इन परिस्थितियों से उत्पन्न प्रभाव से ही सबसे अधिक क्षति दलित-वर्ग को उठानी पड़ी है। इन पौराणिक-सांस्कृतिक मान्यताओं से ग्रस्त इस देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था ने उसे देश का सबसे कुरूप तथा असहाय जीव बना कर रख दिया है। उसके लिए प्रगति के सभी मार्ग एकदम अवरूद्ध कर दिए गए हैं। देश में व्याप्त वर्णव्यवस्था इसका एक सशक्त उदाहरण है, जिसका खामियाजा भारत को अब तक भी भुगतना पड़ रहा है। वर्णव्यवस्था से पनपी विसंगतियों से सबसे अधिक हानि दलित वर्ग को ही उठानी पड़ी है। इस वर्ग को पूर्णतया एक अस्मिताहीन व्यक्ति के रूप में रूपांतरित कर दिया गया है। इसके अधिकतर मौलिक मानव अधिकारों का हनन हुआ है।

वर्णव्यवस्था के अनुसार समाज के सभी अंगों को अपना-अपना कर्म करते रहने का स्पष्ट आदेश है। इन्हीं आदेशों को बजाते रहने के कारण ही दलित आज भी मुर्दा पशु उठाने तथा उनको खींचने से लेकर, सभी प्रकार के मलीन काम करने को अभिशप्त है। ऐसे ही अभिशप्त लोगों की कहानी का चित्रण इस कहानी में प्रभावशाली ढंग से किया गया है। मुर्दार की खाल उतारते नन्हें-नन्हें हाथों का वर्णन पाठक के हृदय को संज्ञाशून्य कर देगा। निम्न जाति को लेकर उपजी कुंठाओं का चित्रण, इस कहानी का अति संवेदनशील पहलू है। दलित-जीवन का नारकीय चित्रण उन पाठकों के लिए एक नया व मौलिक अनुभव होगा, जो ऐसी परिस्थितियों से कभी रू-ब-रू हुए भी नहीं होंगे। उनके भीतर भी वर्णव्यवस्था के प्रति घृणा का एक लावा, कुछ क्षणों के लिए उफ़न सकता है। दलित जीवन की वेदनाएं उनके अस्तित्व को झटका दे सकती है।

13.2 'हड्डा रोडी और रेहडी' की कथावस्तु

पंजाबी के दलित साहित्यकार गुरमीत कड़ियालवी की पंजाबी कहानी, जो कि पंजाब की पृठभूमि में सृजित की गई है, की चर्चा करने से पहले इसमें वर्णित शब्द 'हड्डा रोड़ी' और रेहड़ी के अर्थ ग्रहण कर लेना आवश्यक होगा, क्योंकि लेखक द्वारा कथा का संपूर्ण ताना बाना इन्हीं दो शब्दों के ईर्द-गिर्द बुना गया है। यह दोनों शब्द मूलतः पंजाबी भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं।

इस कहानी का नाम 'हड्डा रोड़ी और रेहड़ी' है। प्रथम शब्द 'हड्डा रोड़ी' दो भागों में विभक्त है। 'हड्डा' शब्द के अर्थ यहां 'हड्डी' को ध्वनित करते है तथा 'रोड़ी' का अर्थ पंजाबी भाषा में गंदगी के ढेर से ध्वनित किए गए हैं। यह स्थान अधिकतर गांव या शहर के बाहर ही देखा जाता है। चूंकि यहां मुर्दा पशुओं को ला कर उनकी खाल उतारी जाती है, इसलिए यहाँ प्रायः मुर्दा पशुओं के पिंजर यत्र-तत्र बिखरे दिखाई पड़ेंगे तथा गांव के आवारा कुत्ते व गिद्ध इन हड्डियों या मांस के इधर-उधर छितरे लोथड़ों को चिंचोड़ते हुए दिखाई देंगे। यही कारण है कि इस स्थान से इतनी तेज दुर्गंध उठती है कि यहां से गुजरना लगभग असंभव ही होता है। अधिकतर लोग यहां से अपने नाक-मुंह को कपड़े से ढांपे बगैर गुजर नहीं सकते।

कहानी में प्रयुक्त दूसरा शब्द 'रेहड़ी' है। यह शब्द भी प्रायः पंजाबी भाषा में ही प्रयुक्त किया जाता है। इसके अर्थ उस छकड़ानुमा वाहन से है जो कि मानव या पशु द्वारा चालित किया

जाता है। इस प्रकार के वाहन पर इस कहानी का पात्र मुर्दार लाद कर हड्डा रोड़ी में पहुंचाता हुआ वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत कहानी पंजाब के एक पिछड़े देहात में रहने वाले मानसिक यंत्रणाएं व आर्थिक अभावों तथा अस्पृश्यता का दंश झेलते हुए एक पंजाबी दलित परिवार की रौंगटे खड़े कर देने वाली कथा है। इस कहानी का आरम्भ इस कहानी के केंद्रीय-पात्र प्रगाश की मानसिक उहापोह के चित्रण से होती है। कहानी का यह दलित-पात्र एक ऐसे सरकारी विभाग में निरीक्षक के तौर पर कार्यरत हैं जहां सरकारी अनाज को बड़े-बड़े निर्मित गोदामों में सहेज कर रखा जाता है। यहां उसका वेतन तो बढ़िया है ही साथ ही ऊपरी आमदनी के स्रोत भी कम नहीं हैं, जिसके द्वारा वह जल्दी ही आर्थिक रूप में सबल हो जाता है। गोदाम से पांच-सात अनाज की बोरियां इधर-उधर कर लेना उसके लिए अधिक कठिन नहीं होता। लेखक के अनुसार इस विभाग में कार्यरत चतुर्थ दर्जे के कर्मचारी चनणसिंह की भी अपनी एक निजी कोठी है। इस कहानी के पात्र ने भी गांव स्थित अपने जीर्ण-शीर्ण मकान का काया कल्प करके रख दी है। यह सब कुछ वह कुछ वर्षों में ही कर लेता है। इसके अतिरिक्त वह एक स्कूटर तो खरीद ही लेता है तथा एक भूभाग भी खरीदने में सफल रहता है।

उसे इस बात का गर्व भी है कि उसके ऊंची जाति वाले मित्र उसके आगे-पीछे 'बाबू जी-बाबू जी' करते घूमा करते हैं। इसके साथ उसे इस बात का दुःख भी है कि वह इन मित्रों को अपने घर पर नहीं ला सकता। इसके पीछे एक बहुत बड़ा कारण है। उसके नये-नवेले घर के प्रांगण के एक कोने में उस रेहड़ी की उपस्थिति है जिस पर उसका पिता मुर्दार लाद कर कहानी में वर्णित हड्डारोड़ी में पहुंचा कर उसकी खाल उतारा करता है। चूंकि वह अपनी रईसी की डींगे अपने इन ऊंचीं जाति के मित्रों के सम्मुख हांकने में कोई कोर-कसर नहीं उठा रखता, इसलिए यह आवश्यक है कि अपना वैभवत दिखाने अपने घर पर भी उन्हें आंमत्रित करे। परन्तु घर के प्रांगण में खड़ी यह गाड़ी उसे सबसे बड़ा अवरोध लगती है। इस गाड़ी के कारण उसके कई पोल खुल सकते हैं। उसकी जाति का पता सबको हो सकता है तथा साथ ही उसके बाप द्वारा मुर्दार ढोने के कारण उसकी सामाजिक स्थिति भी निम्न स्तर पर आ सकती है।

यह आंशकाएं उसे सदैव भयभीत किए रहती हैं। वह उसके भीतर निकृट भावना उपजाने वाली वस्तु को इस रेहड़ी को - समूल नट कर देना चाहता है। 'यह एक ऐसा ढोल है जो उसके गले में पड़ा सबको दिखाई पड़ रहा है।' वह सदा प्रयासरत है कि वह इस जाति-पांति वाले समाज में अपना मुकाम किसी भी प्रकार सर्वोच्च बनाए रखे। इसके लिए उसे कोई भी हथकंडा क्यों न अपनाना पड़े। वह अपार धनसंपदा का स्वामी बनना चाहता है ताकि वह इस नीच जाति के शिकंजे से किसी प्रकार छूट सके। उसकी इस छटपटाहट में भ्रटाचार जैसी व्याधि का कोई अर्थ नहीं रहता। आर्थिक-समृद्धि ही एक सबसे बड़ा मूल-मंत्र ही उसे दिखाई पड़ता है। 'वह किसी भी प्रकार इस जाति-पांति की अन्धेरी गली से निकल भागना चाहता है जिसने उसे सदियों तक हाशिए पर धकियाये रखा है।' इसका एकमात्र समाधान यह है कि वह अपार धन संपदा का स्वामी बन कर इस समाज के ऊंचे पायदान पर जा पहुंचे। उसे निधर्नता एक अभिशाप लगती है जिसका वह बचपन में शिकार रहा है।

इन सब के वावजूद भी इस पात्र की एक विशेाता यह भी है कि वह निर्धन व असहाय व्यक्ति के प्रति अति-संवेदनशील है। वह किसी भी श्रमिक को कठिन परिश्रम करते हुए देख द्रवित हो उठता है। शायद इसका कारण यह है कि वह स्वंय इन अंधेरी गलियों से जूझकर बाहर निकला है। उसको अपनी दरिद्रता विस्मृत नहीं हो सकी है। वह इतना

संवेदनशील है कि किसी भी श्रमिक स्त्री को चौकीदार या अर्दली के द्वारा अपमानित होते हुए देखता है तो उसकी आंखें छलछला उठती हैं। सरकारी अनाज के गोदामों में यह श्रमिक औरतें जो कि अधिकतर दलित जाति से ही संबंधित होती हैं, अनाज की साफ-सफाई करती हुई देखी जा सकती हैं। इनसे कोई भी दुर्व्यवहार करता हुआ देखा जा सकता है। इनके साथ होते दुर्व्यवहार को देख कहानी के इस पात्र को असीम वेदना का अनुभव होता है।

प्रगाश की एक सगी बहन भी है जिसके विवाह को लेकर वह अक्सर चिंतामग्न भी रहता है। उसे इस बात की चिंता लगी रहती है कि उसकी बहन के विवाह के उपरांत घर की रसोई कौन जलाएगा? इसी कारण वह सोचता है कि उसकी बहन की विदायी से पहले उसका अपना विवाह हो जाए ताकि पत्नी के रूप में आने वाली महिला रसोई घर को संभाले। अपना विवाह वह किसी संम्पन्न परिवार में करना चाहता है। निर्धनता को वह एक कलंक मानता है। इसी के चलते वह बहुत से रिश्ते ठुकरा चुका है। अपने जैसे किसी समृद्ध परिवार से संबंध बनाना, उसकी प्राथमिकता है। लेकिन यहां भी घर के कोने में खड़ी वह रेहड़ी उसके लिए एक अभिशाप बन कर खड़ी है। इस रेहड़ी के कारण कई अच्छे खाते पीते घरों के रिश्ते उसके हाथ से फिसल चुके हैं। एक बार तो यह स्थिति अति विकट हो उठती है। लगभग तय समझा जाने वाला रिश्ता, अपने अंतिम क्षणों में इस रेहड़ी के कारण हाथ से निकल जाता है।

गांव चत्तों वालों ने उसका सुन्दर घरबार देखकर इस रिश्ते के लिए अपना मन लगभग बना ही लिया था। अपने सुन्दर बने ड्रांइग रूम में बैठ कर शगुन आदि देने की मंत्रणा अपने अंतिम पड़ाव में पहुंचने वाली ही थी। यहां तक कि शगुन आदि देने की दिन-तिथि आदि तक तय कर ली गई थी। लेकिन यह सुखद स्थिति इस रेहड़ी के कारण दुःखद रूप में परिवर्तित हो जाती है। हुआ यूं कि प्रगाश के घर से रवाना होने से ठीक कुछ देर पहले लड़की का भाई जसंवत इस रिश्ते की मध्यस्थता करने वाले के साथ गुप्त रूप में कुछ मंत्रणा करने उस ड्रांइग रूम से बाहर प्रांगण के एक कोने में आया तो उसकी उड़ती हुई दृष्टि उस रेहड़ी पर पड़ गई जिसको देखकर वह एक दम चौंक उठा था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि इतने शानदार मकान के प्रांगण में इस रेहड़ी का क्या औचित्य? रेशम में टाट का पैबंद होना, उसको एक असामान्य सी स्थिति प्रतीत हुई। इसलिए उसका चौंक उठना स्वाभाविक ही था। लड़की का भाई उस व्यक्ति के साथ बातें कर रहा था। लेकिन उसकी शंकालु दृष्टि उस रेहड़ी के वजूद पर गड़ी हुई थी। वह बहुत कुछ समझने का प्रयास कर रहा था। उसके मन में ढेरों प्रश्न उमड़ रहे थे। वैसे भी नये-रिश्ते-नाते तलाशते समय हम आवश्यकता से अधिक सतर्कता से काम लेते हैं। उसके चेहरे पर भी इसी सतर्कता के भाव स्पष्ट उभरे हुए थे।

इसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि लड़की का भाई जसवंत अधिक देर तक वहां रूका न रह सका। बिना कोई बात किए वह वहां से निकल गया। बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि उन्होंने इस रेहड़ी के कारण इस रिश्ते को नकार दिया था, क्योंकि बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद भी उन्होंने कोई जबाव नहीं दिया। घर में जमी इस रेहड़ी ने एकबार फिर सारा खेल बिगाड़ दिया था। कहना चाहिए कि इसने इस रिश्ते को बनने से पहले जैसे निगल लिया था। वह इस रेहड़ी का नामोनिशान ही मिटा देना चाहता था। उसके लिए यह छकड़ा जैसे एक अभिशाप बन गया था। उसे लगा कि गाड़ी उसके मार्ग में एक बड़ा अवरोध था जिसे वह चाह कर भी नहीं हटा सकता था। वह चाह कर भी इसे नेस्तनाबूद नहीं कर सकता था। वह जब भी इस रेहड़ी के अस्तित्व को मिटाने का निश्चय करता तो उसके सामने बापू का झुर्रियों से अटा चेहरा उभर आता। एक ऐसा चेहरा जिसने इस रेहड़ी पर मुर्दार ढोते हुए अपने जीवन का बचपन तथा संपूर्ण जवानी होम कर दी हो। वह बापू को

यह मुर्दार ढोने जैसा काम छोड़ने को बाध्य करता, बापू उतनी ही कठोरता से उसकी इस बात को ठुकरा देता।

उसके पास ढेरों तर्क होते जिनको वह चाह कर भी काट नहीं पाता। वह हर बार बापू के तर्कों के सामने परास्त हो जाता। बापू अपने कार्य को छोड़ने की बात सोच भी नहीं सकता था। उसके लिए यह एक अकल्पनीय बात थी। उसके लिए तो वह कार्य जैसे पूजा से भी बढ़ कर था। बापू अपनी रूआंसी आवाज में इस कार्य को न छोड़ने के कई कारणों का उल्लेख करता। बापू का सबसे बड़ा यह तर्क होता कि इस पैतृक काम ने हम सबको भूखों मरने से बचाया है। वह प्रगाश को बताता कि उसकी मां का महीनों इलाज होता रहा, जिस पर ढेरों रूपए खर्च हुए। बापू उसे आगे जानकारी देता कि उसके पास ऐसा कौन सा कारूं का ख़ज़ाना था जिसमें से पैसे निकाल कर उसकी मां पर लगाता रहता। इस उपचार पर लगा ढेरों पैसा इस रेहड़ी के कारण कमा कर खर्च किया गया था, अन्यथा उसकी मां वर्षों पहले ही इस संसार से कूच कर गई होती। प्रगाश को इस रेहड़ी का महत्व बताते हुए उसके बापू का स्वर भरभरा उठता था। उसके लिए यह रेहड़ी जैसे एक कांरु का ख़जाना ही थी। इस रेहड़ी के बल पर प्रगाश की पढ़ाई जारी रही थी। बापू प्रगाश को स्मरण करवाता है कि गांव में उसकी जाति वाला उसके अतिरिक्त और कोई भी अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख सका।

उसकी जाति में वही एकमात्र लड़का है जो अपनी शिक्षा के बाद सरकारी नौकरी प्राप्त करने में सफल हो सका है। बापू उससे प्रश्न करता है कि वह इन सबके उपरांत भी कैसे कह सकता है कि वह यह पैतृक धंधा छोड़ दे। वह प्रगाश को समझाने का प्रयास करता है कि कोई भी कार्य घटिया नहीं होता। बुरा होता है मनुष्य का ऐसा सोचना। बापू बताता है कि जो काम उन्हें दो वक्त की रोटी उपलब्ध करवाता है, वह बुरा या घटिया किस प्रकार घोषित होता है। बापू के इन तर्कों के समक्ष प्रगाश का सिर हमेशा झुक जाता है। बापू की इन बातों का प्रभाव बहुत दिनों तक उसके मन पर बना रहा। परंतु इस गांव चत्तो वाली घटना से यह प्रभाव अब एक क्रोध में परिवर्तित हो चुका था। उसका मान-मर्दन हो चुका था। उसका रिश्ता पुनः टूट चुका था उसका हृदय फिर विचलित हो उठा था। कोने में अटल खड़ी रेहड़ी उसे अब सब विपत्तियों का कारण लग रही थी। वह घृणा से उस गाड़ी को देख रहा था। यह गाड़ी अब उसे एक विष-बुझे तीर-सी प्रतीत हो रही थी। वह किसी भी मूल्य पर इसे हटाना चाहता था। वह इसे आग लगाकर नष्ट कर देना चाहता था।

उसने बाहर निकल कर इधर-उधर देखा। इस समय घर पर कोई भी मौजूद नहीं था। उसकी बहन किसी सहेली के यहां विवाह पर गई हुई थी तथा उसका बापू भी गांव में किसी के घर एक पंचायत के फ़ैसले पर गए हुए थे। वह सोचता है कि जब से उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है, उसके बापू का सारे गांव में सम्मान होने लगा है। उसको पचांयतों में बुलाया जाने लगा है।

प्रगाश घर में इस समय नितांत अकेला था। उसे लगा कि इस रेहड़ी के अस्तित्व को समाप्त करने का यह एक सुनहरा अवसर था। उसने बाहर झांक कर देखा। उसे कोई भी व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। दूर उसे हड्डारोड़ी में गिद्धें ही दिखाई दीं जो कि पशुओं की हड्डियों से मांस ढूंढने में व्यस्त थीं। उसका रेहड़ी को जलाने का निश्चय बन चुका था। वह इस हड्डारोड़ी को भी जला देना चाहता है। यह स्थान उसे सभी मुसीबतों की जड़ लगता है। उसे पिछले दिनों घटित एक घटना का स्मरण हो आता है। उस दिन चाय की गर्म-गर्म चुस्कियों के साथ एक नवागत निरीक्षक शर्मा से उसकी देश की सामाजिक, आर्थिक समस्याओं पर बातचीत हो रही थी। बातों-बातों में शर्मा ने प्रगाश से कहा था कि

यदि निम्न जाति वाले लोग यह चमड़ा वगैरा उठाना बंद कर दें तो सभी ओर गंदगी के ढेर जमा हो जाए। वह शायद प्रगाश की निजी जिंदगी के बारे में नहीं जानता था। प्रगाश का वैसे भी जाति को दबाए रखने में विश्वास रहता है। इस चर्चा ने प्रगाश को जैसे अवसाद से भर दिया था। प्रगाश के चेहरे पर उभरे असहजता के चिन्हों को शर्मा ने शायद भांप लिया था। इसके बाद उसने वह चर्चा वहीं समाप्त कर दी थी। उस दिन उसकी संवेदनाओं में शर्मा का वह कथन गूंजता रहा था। इसी कारण वह उस दिन आधे-दिन का अवकाश लेकर घर आ गया था। वह उस मानसिक वेदना से छुटकारा पाना चाहता था। निम्न जाति के प्रति शर्मा के विचार उसकी मानसिकता में जैसे जम गए थे। हड्डारोड़ी में बिखरी हुई हड्डियां, गिद्धों का जमघट तथा उसमें भौंकते हुए अवारा कुत्तों का शोर जैसे उसके ज़ेहन में खुद गए थे। वह जब भी आंखें मूंदता तो सारा दृश्य जैसे एकदम साकार हो उठता।

वह कब खाट से उठता है और मिट्टी के तेल का डिब्बा कब उठाता है - यह सब उसे पता भी नहीं चलता। वह फ़ैसला करता है कि इस गाड़ी के अस्तित्व को मिटा देगा। 'सभी वेदनाओं का कारण यही गाड़ी तो है। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। इस गाड़ी के अस्तित्व के नेस्तनाबूद होने के साथ ही उसके सभी दुःखद अनुभव समाप्त हो जाएंगे। हड्डारोड़ी में भिनभिनाती हुई मक्खियां, बदबू का उठता रेला और भौंकते हुए कुत्तों का शोर यह सभी उसके मानस पटल से हट जाएंगे, जब यह रेहड़ी यहां से हट जाएगी।

अछूतों पर वर्णव्यवस्था द्वारा थोंपे गए धंधों को छोड़ने के बाद भी उनके साथ चिपकी हुई निम्न जाति की पहचान उसके जन्म से मृत्युपर्यंत जसकी तस कायम रहती है। चाहे जातिगत व्यवसाय से जुड़े चिह्नों को नट भी कर दिया जाए अथवा अच्छी नौकरी और आधुनिक जीवन प्रणाली को अपनाने के बाद भी जातिगत पहचान को अन्य जन भुला देना नहीं चाहते। आर्थिक समानता के बावजूद चमार, पासी, खटीक, भंगी, चुह्ड़े जैसे जाति के संबोधन से आज भी अछूतों को पुकारा जाता है। इनकी तरक्की या बौद्धिक क्षमता या गुणवत्ता को जातिवादी मानसिकता नकार करके इनकी जाति से जुड़ी व्यक्तिगत पहचान को बरकरार रखके इन्हें हीन दृष्टि से देखा जाना आम बात है। उसको अपने बचपन से ही इन सब दृश्यों का एक लम्बा अनुभव हो चुका है। उस समय उसे यह काम बुरा प्रतीत नहीं होता था, क्योंकि उसकी नन्हीं सी बुद्धि में अच्छे-बुरे की परिभाषा अभी नहीं समाई थी। हाथों में पैनी छुरी पकड़कर मुर्दार की आंतों को बाहर निकाल देना, उसके लिए जैसे अति सहज क्रिया होती थी। मुर्दार की खाल उतार कर घर के कच्चे फर्श पर सूखने डालने पर पूरा घर दुर्गंध से भर उठता था। इस दुर्गंध का वह आदी हो चुका था। यही दुर्गंध शायद उसके शरीर और कपड़ों में समा जाती होगी तभी तो उसके सहपाठी उससे दूर रहा करते थे। तब उसकी नन्हीं बुद्धि में इस कार्य के प्रति घृणा समा गई थी। उसकी स्मृति में यह रेहड़ी उभरती जिसे वह एक बैल के सहारे हांका करता था। उसके नन्हें-नन्हें हाथ बापू की सहायता किया करते थे। उसे अच्छी तरह स्मरण है कि जब पशु की खाल इस रेहड़ी पर लाद दी जाती थी तो वह बड़े उत्साह से रेहड़ी के ऊपर बैठ, उसको हांकता हुआ घर तक ले जाया करता था। खाल के ऊपर भिनभिनाती हुई मक्खियां भी साथ-साथ चलती हुई उसे बुरी नहीं लगती थीं। कभी-कभी वह पशु चराने वाले लड़कों से मिल कर बीड़ी पीने की हरक़त भी कर बैठता था। बापू को एक दिन इसका पता चल गया था। अपनी रुआंसी आवाज़ में बापू ने उसे डांटतें हुए कहा था कि बीड़ी पीना अच्छे व्यक्तियों का काम नहीं। बापू का कहना था कि वह एक बहुत निर्धन व्यक्ति है। वह इसी आशा में जीवित है कि एक दिन उसका बेटा बड़ा होकर तथा पढ़-लिख कर उसे सुख देगा उसने अपने पिता के आंसुओं से भीगे चेहरे को बहुत ध्यान से देखा था। पिता की बात जैसे उसके ज़ेहन में कहीं गहरे बैठ गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि वह नियमित पाठशाला जाने

लगा था। अपने हमउम्र लड़कों से उसने खेलना लगभग बंद कर दिया था। उसकी रूचि पढ़ाई की ओर बढ़ती चली गई। उसके सामने बापू का झुर्रियों भरा चेहरा घूमता रहता था। उसका स्कूल में जाना नियमित हो चुका था। उसमें दायित्व बोध जग चुका था। पढ़ाई के बाद घर आ कर वह अपने बापू का हाथ भी बंटाता था। अपने बैल के लिए घास लाना भी उसकी दिनचर्या में शामिल होता था।

सारा दिन काम की अधिकता से थकान से चूर हो कर वह अपनी बीमार मां की खाट के समीप आ कर सिसकने लगता था। उसकी मां भी उसकी दशा देख रोने लग पड़ती थी। उसके रोने का कारण यह होता था कि उसके मरने के बाद उसे कौन संभालेगा। अपनी मां की मृत्यु का दृश्य जैसे उसके सामने एकदम घूम जाता है। उसे अच्छी तरह याद है कि वह उस दिन वह स्कूल से आधी छुट्टी को घर खाना खाने आया था। उस दिन घर में बहुत सी महिलाओं का रूदन सुनकर वह एकदम भयभीत हो उठा था। उसकी मां के निर्जीव शरीर से चिपक कर वह बहुत रोया था। उसे बाद में पता चला था कि उसकी मां को क्षय रोग था।

मां की मृत्यु के बाद प्रगाश के जीवन में बहुत सा परिवर्तन आ जाता है। अब वह अपने पिता के साथ काम में हाथ बंटाते नहीं थकता। मुर्दार की दुर्गंध का अहसास उसकी नाक में अब नहीं होता। तमाम प्रकार के आर्थिक अभावों के बाद भी पिता ने उसकी पढ़ाई जारी रखी थीं। इन घोर आर्थिक संकटों मे मुर्दार ढोने वाली यह रेहड़ी उनके परिवार को डूबते को तिनके का सहारा होती थी। यदि इस प्रांगण के कोने में यह रेहड़ी न खड़ी होती तो वह कदापि अपनी शिक्षा आगे पूर्ण न कर पाता। यदि उसकी शिक्षा पूर्ण न हो पाती तो वह आज इस सुखद स्थिति में कभी भी न पंहुच पाता। उसे अच्छी तरह याद है कि गांव के अन्य लड़के अपनी पढ़ाई को बीच में ही छोड़ चुके थे। लेकिन इस रेहड़ी ने उसे अधोगति से उबार लिया था। आज वह जिस स्थिति में है, उसका सारा श्रेय इस रेहड़ी को ही जाता है - यह तथ्य उसे भलिभांति ज्ञात हो जाता है। रेहड़ी, हड्डा रोड़ी तथा रेहड़ी पर पड़ी खाल की बदबू और उस पर भिनभिनाती हुई मक्खियां उसकी स्मृति में पुनः उभर आती हैं। अपने शैशवकाल से लेकर अब तक की घटनाएं जैसे उसके सामने साकार हो उठती हैं। उसकी आंखों से बहती अविरल धारा उसके होठों को जैसे नमकीन कर जाती है। उसे पता भी नहीं चलता कि कब हाथ में उठाया हुआ मिट्टी के तेल का कनस्तर उसके हाथों से छूट कर नीचे भूमि पर गिर जाता है और उस कनस्तर का सारा घासलेट पृथ्वी पर छितरा जाता है। उसको, रेहड़ी को लेकर उपजी हीन भावनाओं पर लज्जा का आभास होने लगता है। वह चाहता है कि दौड़ कर अपने बापू के पास जा पहुंचे और उसके पांवों से लिपट कर जोर-जोर से रोए और उनसे क्षमा मांगे। रेहड़ी तथा हड्डारोड़ी को लेकर उपजी हीन भावना उसमें एकदम पंख लगाकर फुर्र से उड़ जाती है। उसके भीतर नये उत्साह का संचार होता है। वह खाली कनस्तर वहां से उठाता है और बड़े आराम से उसी खाट पर जा पसरता है, जहां से वह उठा था।

13.3 हीनता बोध से मुक्ति की छटपटाहट

प्रस्तुत कहानी में छुपी हुई हीनता बोध की वेदनाएं हमारे सामने उभर कर स्पष्ट रूप में आ जाती हैं। दलित जीवन की त्रासदी का वर्णन करती हुई यह कहानी जहां पंजाब के ग्रामीण जीवन को चित्रित करती है, वहीं दलित-संवेदनाओं द्वारा पाठक के अंतर्मन को छूने में भी सक्षम है। नारकीय जीवन को भोगते हुए दलित वर्ग की दशा का चित्रण करती हुई कहानी के पात्र यहां आर्थिक विमताओं से जूझते हुए दिखाई पड़ते हैं, वहीं वे जातिगत टिप्पणियों के कारण पीड़ित भी नज़र आते हैं। इस पीड़ा से बचने के लिए वे अपनी जाति छुपाने पर बाध्य होते हैं। इस कहानी का केंद्रीय पात्र प्रगाश जाति की ग्रंथि से पीड़ित हो अपनी जाति

छुपाने पर बाध्य होता है। नवागत निरीक्षक शर्मा के संवाद दलित जाति को लेकर की गई टिप्पणियों द्वारा ऊंची जाति की मानसिकता को प्रदर्शित करते हैं। एक ऊंची जाति वाला व्यक्ति किस प्रकार अपने जातिगत गर्व से पीड़ित है, इसका जीता-जागता उदाहरण शर्मा की मानसिकता से मिलता है। हड्डा रोड़ी की गिद्धें जो कि उस स्थान में पड़े मांस का भक्षण कर, एक सफाई अभियान का कार्य भी करती हैं, मुर्दार उठाने वाले दलितों के काम से समानता दर्शाती है। दलित भी मृत पशुओं को घरों-बाज़ारों से न उठाएं तो उसकी सड़न से सारा क्षेत्र दुर्गंध से अट जाए, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार गिद्धें यदि हड्डारोड़ी में पड़े मुर्दारों के लोथड़ों को न खांएं तो वह सारा क्षेत्र बदबू से भर जाए। शर्मा की दृष्टि में मुर्दार खाने वाली गिद्धें तथा मुर्दार ढोने व्यक्ति वाले यदि आज भी अपना पैतृक पेशा छोड़ दें तो लोग शहर-बाज़ार छोड़ कर भाग उठें।

जाति को लेकर पैदा हुई हीनता की ग्रंथि का प्रभाव मानव मन पर कितना होता है, इसे भी प्रगाश की मानसिकता में ढूंढा जा सकता है। उसका संपूर्ण अस्तित्व जैसे ठहर जाता है। वह एकदम अवसाद से भर उठता है। इसी अवसाद से उबरने के लिए उसे तीन दिन का अवकाश लेना पड़ता है। वह उन तमाम प्रश्नों से बचना-चाहता है जो उसके वजूद को छलनी कर सकते हैं। लेखक के अनुसार - 'ऐसे प्रश्नोत्तर जिनका सामना करने से प्रत्येक निम्न जाति वाला भागना चाहता है - मानसिक पीड़ा को उभारते प्रश्न। खुद को अपनी दृष्टि में गिराते हुए प्रश्न....।'

ऐसे प्रश्नों से इस कहानी का पात्र ही नहीं जूझता बल्कि आज का संपूर्ण दलित वर्ग जूझ रहा है। यात्रा करते हुए, किसी कार्यशाला या दफ्तर में कार्य करते हुए, इन प्रश्नों से जूझना पड़ सकता है। आपकी पहचान - यदि आप दलित वर्ग के हैं - यह नहीं कि आप एक उत्तम या अधम व्यक्ति हैं, आप कोई व्यवसायी हैं या एक कर्मचारी हैं, आप नेता हैं या एक कुशल अभिनेता, आप एक कुशल कारीगर हैं या एक अकुशल कामगार, आप एक चोर हैं या पुलिस, आप एक आला दर्जे के सरकारी अफसर हैं, या एक चतुर्थ दर्जे के कर्मचारी। आपकी पहचान यह है कि आप अमुक जाति के हैं। आज भी इस देश का नागरिक थानों में, अदालतों में जाति के तौर पर चिन्हित किया जाता हुआ देखा जा सकता है। लेकिन यहां त्रासदी यह है कि कथित ऊंची जाति वाला व्यक्ति इन प्रश्नों से उत्पन्न मानसिक पीड़ा से नहीं जूझता, जबकि ठीक इसके विपरीत दलित वर्ग का व्यक्ति इन प्रश्नों से ढह जाता है। वह जानता है कि इस प्रश्न के बाद उसका भरा-पूरा व्यक्तित्व एकदम बौना हो कर रह जाएगा तथा उसका धरातल खिसकता चला जाएगा। इसके उपरांत कोई भी मनोवैज्ञानिक उसको पुनः स्थायित्व प्रदान नहीं कर सकता। ऐसी स्थितियों को उभारने में यह कहानी पूर्णतया सक्षम है।

13.4 आर्थिक शोषण में जाति संरचना की भूमिका

'हड्डा रोडी और रेहडी' कहानी की कथा वस्तु का एक दूसरा सशक्त पक्ष भी हमारे सामने उभर कर आता है वह है निम्न काम से पनपी हीन भावना से उबरने की तमाम कोशिशें दलितों के मनोवैज्ञानिक स्थितियों से हमें रूबरू करती है। इस कहानी के पात्र प्रगाश पूरी कहानी में हीन भावना से जकड़ा हुआ प्रतीत होता है। घर के प्रांगण में खड़ी रेहड़ी इस हीन भावना का मुख्य स्रोत है। जो गाड़ी उनके जीवन का पहिया घुमाती रही, वही उसके लिए दुःखद स्थितियां भी पैदा करती है। उसका रिश्ता भी इसी रेहड़ी के कारण टूटता दिखाया गया है। यह रेहड़ी उनके व्यक्तित्व पर लगा हुआ एक कलंक प्रतीत होती है। बहुत से रिश्ते इस रेहड़ी के कारण टूट जाते हैं। कहानी में वर्णित यह घटना यह तथ्य भी उदघाटित करती है कि मलीन कार्य करने वाले दलितों की सामाजिक स्थिति अति दलित जैसी बन जाती है। कोई भी उनसे अपने आंतरिक संबंध स्थापित नहीं करना

चाहता। उसकी सामाजिक स्थिति अति दयनीय बन जाती है तथा बाद में उसकी एक अति निम्न जाति बन जाती है। आज भी ऐसी स्थितियां बनती देखी जाती है। मलीन काम करने वाले दलितों से, कोई भी स्वच्छ व्यवसाय करने वाला दलित वैवाहिक संबंध स्थापित करने से गुरेज़ करता है। ऐसी स्थितियां भी प्रगाश की हीन भावना का कारण बनती है। स्कूल में उसकी स्थिति एक अतिदलित जैसी ही है उसके सहपाठी उससे दूर रहना चाहते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यह एक मुर्दार उठाने वाले दलित का बेटा है। इन सब घटनाओं से उत्पन्न स्थितियां उसको अति बौना बनाने में सहायक होती हैं। वह इस काम से बचना चाहता है। वह हाथ में पैनी छुरी लेकर खाल नहीं उतारना चाहता। वह दुर्गंध से भरी हड्डारोड़ी से बचना चाहता है। इस काम से बचने के लिए पशु चराने वाले लड़कों की बुरी संगति में पड़ जाता है। लेकिन अपने पिता के यह समझाने पर कि कोई भी कार्य बुरा नहीं होता, व्यक्ति की सोच ही बुरी होती है, उस पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव होता है तथा अपनी हीन भावना पर काबू पाने में समर्थ हो जाता है। इसी प्रकार की हीन भावना से बाहर निकल कर वह रेहड़ी जलाने के लिए पकड़ा हुआ घासलेट से भरा हुआ कनस्तर, नीचे गिरा देता है तथा रेहड़ी को लेकर उपजी तमाम हीन-भावना एकदम समाप्त हो जाती है। जिस रेहड़ी ने पूरे परिवार का भरण-पोषण किया हो, वह एक कलंक कैसे हो सकती है? इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक घटनाएं निम्न कार्य को लेकर तथा निम्न जाति को लेकर पैदा हुई हीन-भावना को दूर करने में सक्षम सिद्ध होती हैं।

कहानी का केन्द्रीय बिन्दु, जाति को लेकर गर्व करने में नहीं, बल्कि निम्न जाति में व्याप्त कठोर आर्थिक विषमताओं में जूझते हुए दलित वर्ग के विाम जीवन के कटु यथार्थ से संघर्षरत रहने में ध्वनित होता है। प्रगाश के पिता निधान सिंह का व्यक्तित्व इस मूल-मंत्र से कभी नहीं भटकता। वह स्वयं संघर्षशील तो है ही, अपने बेटे प्रगाश को भी संघर्षशील होने की प्रेरणा देने में कोई त्रुटि नहीं छोड़ता। वह स्वंय भी अपने पैतृक व्यवसाय से कभी हीन भावना से ग्रस्त नज़र नहीं आता तथा अपने पुत्र को भी इस हीनभावना से बाहर आने को प्रेरित करता रहता है। उसका व्यक्तित्व एक ठोस चट्टान के सदृश है जो संघर्ष से पीछे कभी नहीं हटता दिखाई देता। वह अपने इस संघर्ष के प्रति इतना सजग है कि अपने बेटे के क्रियाकलापों पर पैनी दृष्टि रखता हुआ, उसको संघर्षों से सदा जूझते रहने की सीख देता है। इस व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेाता यह है कि वह संघर्षरत रहता हुआ भी अपना मानसिक संतुलन बनाए रखता है। वह अपने विवेक तथा संघर्ष के प्रति प्रतिबद्ध रहने के कारण ही अपने पुत्र को यह समझाने में सफल हो जाता है कि संघर्ष से ही इस नारकीय स्थिति से बाहर निकला जा सकता है।

कहानी की पृष्ठभूमि पंजाब की है, लेकिन इसमें उल्लिखित घटनाएं व परिस्थितियां संपूर्ण भारत के दलित समाज की ही कही जा सकती हैं। मुर्दार उठाना तथा फिर उसकी खाल उतारना जैसे मलीन काम दलित की ही बपौती बना दिए गए हैं। वह चमड़ा कमाता है, जूते बनाता है तथा हड्डारोड़ी की दुर्गंध में सारा-सारा दिन बड़े मनोयोग से काम करता है। उसका आंगन इन्हीं दुर्गंध भरी खालों से पटा रहता है। वह गांव से हट कर रहता है जिसे लोग छूने से भी डरते हैं। वह जिस स्थान पर रहता है, वहां से सवर्ण जाति के लोग नाक-मुंह ढंक कर ही गुजरते हैं। यही चित्र संपूर्ण भारत के दलित परिवार और उसके व्यवसाय का हो सकता है। सूखे हुए चेहरे, बेजान टांगों से अपना वजूद उठाए दलित की स्थिति कहीं भी भिन्न दिखाई नहीं देती। मुर्दार की खाल निकालने के बाद मुर्दार मांस खाकर जीने की बेबसी को झेलते रहे। दलित-साहित्य विशेषकर आत्मकथनों में इसका बहुत विवरण मिलता है। डॉ. अम्बेडकर ने कई बार दलितों को मुर्दार खाने से रोकते रहे हैं। त्रासदी यह है कि आज भी देश के कई भागों में मुर्दार न खाने के आवाहन किया जिसे स्वीकार करके दलितों ने मुर्दार खाना छोड़ दिया और मलीन कार्य करने भी छोड़ दिए हैं।

दलित मुक्ति के प्रयासों के अंतर्गत दलितों को उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति को बदलने के लिए डॉ. आंबेडकर ने 'शिक्षित होने, संघर्ष करने और संगठित होने' का नारा दिया था जिसे लगभग भारत के सभी दलितों ने स्वीकार कर जीवन में लागू किया। प्रस्तुत कहानी में शिक्षा के महत्व पर बहुत प्रकाश डाला गया है। यह कहानी का एक सशक्त पहलु है। कहानी के पात्र प्रगाश तथा उसका बापू निधान सिंह द्वारा शिक्षा किसी एक जाति की बपौती नहीं है और शिक्षा ही दलित जीवन में नया बदलाव ला सकती है के महत्व को पहचाना और उस पर अमल किया । वास्तविकता का यह पक्ष प्रस्तुत कहानी में बहुत सशक्त रूप में सामने आता है। प्रगाश के बापू के मार्मिक संवाद, पाठक के समक्ष, शिक्षा का महत्व भलि भांति उभारने में सक्षम होते हैं।..... 'मेरी तो सारी उम्र निकल गई गंदगी में हाथ चलाते हुए...एक तुम पर आशा लगी थी कि पढ़ लिखकर सुख देगा, परन्तु तू....?' जैसे संवाद शिक्षा की अनिवार्यता को सिद्ध करते हैं।

जाति व्यवस्था ने समाज के दलित वर्ग को नारकीय जीवन बिताने पर मजबूर करके मानवता के प्रति अन्याय किया इसे कहानी में उल्लिखित घटनाएं इस वास्तविकता से हमें रूबरू कराती है। दलित-साहित्य का उद्देश्य भी यही है कि जाति उन्मूलन से ही समाज में समता की भावना विकसित होकर समतावादी समाज में दलित को स्वतंत्र नागरिक की पहचान हासिल होगी।

13.5 अतरजीत की कहानी 'बिच्छू' का पाठावलोकन

'बिच्छू' पंजाबी के साहित्यकार अतरजीत की मूल पंजाबी कहानी 'ठूहा' का हिंदी रूपातंरण है। बिच्छू को पंजाबी भाषा में 'ठूहा' कहा जाता है। बिच्छू के डंक से व्यक्ति मरता नहीं लेकिन उससे उत्पन्न वेदना से संपूर्ण मानव शरीर झनझना उठता है। एक असहनीय वेदना शरीर में विचित्र सी हलचल पैदा कर देती है। इस वेदना से ग्रस्त व्यक्ति कराहता हुआ अपने संपूर्ण वजूद को भरभरा कर ढहता हुआ देखने पर विवश होता है। ठीक इसी प्रकार के विषैले-बिच्छू के डंक से भी मारक जाति भेद रूपी दंश व्यक्ति में हीनताबोध भर देता है। इस रचना का परिवेश भले ही पंजाब की संस्कृति से संबंधित हो लेकिन कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक जाति व्यवस्था की विद्रूपता का एक जैसा रूप देखा जा सकता है। भारत के अन्य प्रांतों की तरह यह प्रांत भी जातिप्रथा में छुपी घृणा से अभिशप्त है। पंजाब आज अन्य कई प्रांतों से समृद्ध भले ही हो लेकिन आर्थिक सबलता जातिभेद के डंक की चुभन को समाप्त नहीं कर सकी, यही इस कहानी का केन्द्रीय बिंदु पाठक के समक्ष उभर कर आता है।

इस कहानी का ताना-बाना इसके मुख्य पात्र इन्द्र सिंह कटारिया जो जाति से चमार है, के इर्द-गिर्द बुना गया है। उल्लेखनीय तथ्य है कि जो लोग अब चमड़े का काम नहीं करते उनको भी चमार ही कहा जा रहा है। क्योंकि यह शब्द जाति में परिवर्तित हो चुका है। जाति के अर्थ यहां एक अपरिवर्तनशील प्रक्रिया से ध्वनित होते है; अर्थात् इसमे जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत दलित व्यक्ति इसके चंगुल से कभी आज़ाद नहीं हो सकता। इन्द्रसिंह कटारिया के साथ कुछ ऐसा ही घटित होता दिखाई पड़ता है। वह एक कुशल अधिवक्ता है। अपनी जाति छुपाने में ही वह अपनी तथा अपने काम की भलाई देखता है। अपने नामके पीछे 'कटारिया' उपजाति की दुम लगाना उसकी इसी मानसिकता का परिचायक है। लगभग यही मानसिकता उसके वरिठ अधिवक्ता 'चोपड़ा' की भी है। वह भी एक अतिनिम्न जाति 'मेहतर' से संबंधित है। उन्हें यह भय होता है कि यदि लोगों को उनकी जाति का पता चल गया तो वे जीवन में आगे नहीं बढ़ा पाएंगे। वर्णव्यवस्था कभी भी यह आज्ञा नहीं देती कि कोई निम्न जाति का व्यक्ति अपना पैतृक काम छोड़कर अन्य स्वच्छ व सम्मानित कार्य करे। अन्यथा निम्नजाति को छुपाना चोपड़ा तथा इन्द्रसिंह कटारिया की

अनिवार्यता क्यों बन जाती। इन्द्रसिंह के नाम के आगे कटारिया चिपकाना एक स्वाभाविक सी प्रक्रिया लगती है। कभी जब इन्द्रसिंह कटारिया चोपड़ा के पास वकालत के दांव-पेंच सीखा करता था कटारिया की पत्नी चोपड़ा की पत्नी को नापसंद किया करती थी। खुद इन्द्रसिंह भी चोपड़ा की अधीनता को स्वीकार नहीं कर पाता है। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण चोपड़ा का अतिनिम्न जाति का होना है। जिस प्रकार उच्चजाति वाला व्यक्ति अपने से एक पायदान नीची जाति को नीच समझता है उसी प्रकार निम्न जाति वाला व्यक्ति, अपने से एक पायदान वाली नीच जाति से स्वंय को श्रेष्ठ घोषित करने में संतुष्टी का अनुभव करता है। यही शायद जाति का कटु यथार्थ है।

दोनों जब मिलते है तो एक-दूसरे को 'चोपड़ा साहेब' तथा 'कटारिया साहेब ' जैसे सम्मानपूर्वक शब्दों में अभिवादन करते हैं। उनका यह परस्पर व्यवहार का प्रदर्शन भारतीय समाज की आंतरिक दशा को प्रकट करती है। भारत का वर्तमान समाज इन्द्रसिंह कटारिया तथा चोपड़ा की इसी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता हुआ दिखता है। यहां विभिन्न जातियों वाले लोग परस्पर मिलते-जुलते दिखाई तो अवश्य देते हैं, लेकिन उनकी आंतरिक मनोदशा इसके विपरीत होती है। इसी प्रकार जातियों में सिमटा संपूर्ण भारत अपनी-अपनी जातियों में ही गुजर-बसर करने और रोटी-बेटी व्यवहार रखने में ही धन्यता पाता है।

इन्द्रसिंह कटारिया तथा चोपड़ा, दोनों ही जातीय हीन भावना से पूर्णतया मुक्त हो चुके हैं। सरकारी योजना का लाभ मिलने तथा सरकारी छात्रवृत्तियों की सहायता को वे अब अपने दिमाग से निकाल चुके हैं। उस याद को उन्होंने भूला दिया है जब चपड़ासी के यह कहने पर कि 'एस.सी. लड़के अपनी-अपनी छात्रवृत्ति दफ्तर से जा कर प्राप्त कर लें,' के समय में महसूस होने वाली आत्मग्लानी से वे अब भी उबरे नहीं तब सारी कक्षा उनको हेय दृष्टि से देखती होगी। ऐसा अनुभव लगभग उन सभी दलित विद्यार्थियों को झेलना पड़ता है जो स्कॉलरशीप लेकर अपनी पढ़ाई पूरी करने की चाह में सरकारी अनुदान ग्रहण करते हैं। स्कूल के तथाकथित उच्च जाति के अध्यापक तथा बच्चे जिन नजरों से टटोलते हैं, उसका अनुभव वही व्यक्ति कर सकता है जो सोपानीकृत व्यवस्था के कारण आर्थिक अभाव को झेलता है। इन्द्रसिंह कटारिया तथा चोपड़ा इसी प्रकार की चुभन से गुजर चुके हैं। अब उनका ध्येय सिर्फ यही है कि वे जैसे-कैसे भी अपनी जाति को छुपा कर समाज के एक सम्मानित अंग बन कर जीएं। इसलिए उनका उठना-बैठना तथाकथित उच्च जाति के घरों में रहता है। उनके साथ ही वे अपना दुःख-सुख बांटते है। लगता है कि वे अपने अतीत को जला कर राख कर देना चाहते हैं। साथ ही अपनी जाति की जोंक को अपने बदन से दूर झटक देना चाहते हैं। उनकी आंखें अब हरा-भरा मैदान देखना चाहती हैं, सूखे चटियल मैदानों से वे अब कोई संबंध नहीं रखना चाहते। ऐसी धारणाएं उस प्रत्येक व्यक्ति की हो सकती हैं जो सूखे मरूस्थल से गुजर कर हरे भरे प्रदेश में पहुंचा हो। वह पुनः मरूस्थल का विचार तक भी अपने ज़हन मे उतरने नहीं देता।

इन्द्रसिंह कटारिया के भवन की उपरी मंजिल निर्मित हो रही है। घर आंगन में मज़दूरों की खूब रेल-पेल दिखाई पड़ रही है। माडलटाऊन जैसे संभ्रात मुहल्ले में बनी कोठी की ऊपरी मंजिल तैयार हो रही हो तो इन्द्रसिंह को आरा मशीन की कर्कश आवाज़ भी मधुर प्रतीत होती है। घर में एक उत्सव का माहौल है। कोठी मे लगाने के लिए लाल पत्थर भी रखा हुआ है। ऊपरी मंजिल की दीवारें लगभग ऊपर उठ चुकी हैं। छत डालने के लिए कुछ और मजदूरों की आवश्यकता पड़ने पर और अधिक मजदूरों को लाने के लिए उसे जाना है। उसे आशंका है कि उसके जाने के बाद मजदूर मन लगाकर काम नहीं करेंगे। उसे पुनः अपना अतीत स्मरण हो आता है जब वह स्कूल में पढ़ता हुआ छुट्टी वाले दिन दिहाड़ी किया करता था। यह स्थिति बहुत से दलित परिवारों में अब भी देखने को मिलती है। बहुत

से विद्यार्थी अब भी अपनी पढ़ाई का खर्च इसी प्रकार दिहाड़ी कमा कर पूरा करते हैं। इसी बीच इन्द्रसिंह कटारिया का ध्यान अपनी नेम प्लेट की ओर चला जाता है। उसको प्लेट पर खुदा हुआ अपना नाम ही एक हंसी मात्र लगता है। उसका अतीत फिर उभर आता है। दसवीं पास करने के बाद भी वह अपनी उपजाति 'जुल्लड़ ' लिखा करता था जिस पर उसके सहपाठी हंसी मजाक किया करते थे। उसके पुरखे बुनकरों का काम किया करते थे बी.ए. के अंतिम वर्ष में उसने अपने नाम से जुल्लड़ हटा कर एक अन्य गोत्र 'अणखी ' चिपका लिया था। अन्य नवयुवकों की भांति उसने उन दिनों कविता लिखना भी आरम्भ कर दिया था। एल.एल.बी. करने के बाद उसने यह नाम भी अपने नाम से हटा लिया था। स्कूल के बाद विश्वविद्यालयों तक की यात्रा इसी प्रकार के मानसिक परिवर्तन का सूचक है। कहानी का पात्र भी इसी मानसिक परिवर्तन कि शिकार है। वह अपने अतीत से घृणा करता हुआ सांप की भांति जर्जर हो चुकी पुरानी केंचुली को उतार फेंकना चाहता है। युवा मन एक नया परिवेश ढूंढता है। शायद यह एक अवश्यभावी परिवर्तन की प्रक्रिया है जिसे प्रत्येक युवामन प्रभावित होता है।

13.6 रोजगार की तलाश और हताशा

'बिच्छू' कहानी का नायक नया मकान बनाने की योजना बना चुका है और अपने मकान की छत डालने के लिए मज़दूरों की मण्डी में पहुंचे इन्द्रसिंह कटारिया को दूर तक मज़दूरों की भीड़ दिखाई पड़ रही है। हाथों में अपने-अपने औजार पकड़े, बीड़ियां फूंकते आते-जाते प्रत्येक व्यक्ति पर नजरे गड़ाए आपने अक्सर देखा होगा। सब्जी मण्डी में जिस प्रकार तरकारी का ढेर लगा होता है, मज़दूरों की मण्डी में अपने पिचके हुए चेहरे लिए हुए मज़दूरों का जमावड़ा लगा होता है। सभी की आंखों मे एक आशाभरी तथा निवेदन युक्त परछाइयां लहराती हुई अक्सर आपने देखीं होंगी। एक-आध दिन की दिहाड़ी के लिए उनकी आंखों में कई-कई हजार मिन्नतें भरी होती हैं। इन्द्रसिंह कटारिया भी जब वहां पहुंचता है तो मज़दूरों का रेला उसकी ओर लपकता है। इन मज़दूरों में अधिकतर दुर्बल, ठिगने, बिहारी, पंजाबी तथा उत्तर प्रदेश के मज़दूर है। ऐसे सभी मज़दूरों को पंजाब में 'भइया' कहा जाता है। पंजाब में यही 'भइया' लोग खेतों, कारखानों तथा दुकानों में काम करते हैं। सर्दियों में ठण्डी प्लास्टिक की सस्ती जूतियां पहने यह लोग रिक्शा खींचते यह 'भइया' लोग शहर की हलचल बनाए रखते हैं।

मज़दूरों की भीड़ का हजूम इन्द्रसिंह को मक्खियों की भिनभिनाहट जैसी प्रतीत होता है। इतनी सारी भिन भिनाती हुई आवाज़ों से इनका चुनाव करना उसे बहुत कठिन लगता है। उसे पुनः अपने मज़दूरी के दिन स्मरण हो आते हैं उसके कानों में उन सेठानियों के स्वर गूंज उठते हैं जहां-जहां वह दिहाड़ी करता रहा है। 'किसी का कोई दीन-इमान ही नहीं रहा। पैसे गिन कर ठीक-बजा कर लेते हैं परन्तु काम आधी दिहाड़ी का भी नहीं करते।' इस प्रकार के वाक्य उसके कानों में पुनः गूंज उठते हैं। इन्द्रसिंह कटारिया उस मज़दूरों के हजूम को जब दिहाड़ी का रेट पूछता है तो वह उसे उस बोर्ड को पढ़ने का इशारा करते हैं जिस पर प्रति मज़दूर, मिस्त्री आदि की दैनिक दर का ब्यौरा छपा हुआ है। यह बोर्ड देखकर कटारिया को अपने कॉलेज में बनी विद्यार्थी मज़दूर यूनियन का स्मरण हो आता है। वह कॉलेज में इस यूनियन का कामरेड भी बना था। तब उसे यही प्रतीत होता था कि इंकलाब तो द्वार पर ही आना चाहता है। इन मज़दूरों को देख उसके भीतर संवेदनाएं जाग पड़ी थीं। वह सोच रहा था कि यह सभी मज़दूर उसकी ही जाति के भाई-बंधु हैं-यह अहसास उसको पिघला रहे थे। दूसरे ही क्षण इन अहसासों पर जैसे 'कटारियां साहिब' भारी हो उठा था। उसकी गर्दन गर्व से ऊपर तन गई थी। अब वह पहले का एक असहाय श्रमिक नहीं रहा, वह एक शहर का सम्मानित वकील बन चुका है जिसकी शहर

के सबसे सम्मानित क्षेत्र में कोठी बन रही है और वह इसी कोठी के लिए कुछ मज़दूर लेने आया है। वह बहुत ही रूआब में मज़दूरों से उनकी दिहाड़ी की दर निश्चित करने को कहता है। वह जानता है कि सामने बोर्ड पर लिखी दर 'हाथी के दांत दिखाने के तथा खाने के और' की उक्ति के समान हैं। यहां बोर्ड उसे एक मक्कार वकील जैसा दिखाई दिया। कटारिया उन लोगों के पिचके चेहरे, सूखे होंठ तथा कमजोर शरीर देख कर दुविधा में पड़ जाता है। उसकी दुविधा यही है कि क्या यह लोग छत डालने जैसा भारी-भरकम काम कर भी पाएंगे? मज़दूरों ने शायद उसकी दुविधा को भांप लिया था। वे इन्द्रसिंह कटारिया को आश्वस्त करते हैं कि वे देखने में भले ही दुर्बलता की प्रतिमूर्ति लगते हों लेकिन वे अपने कार्य में पूर्ण सिद्धहस्त सिद्ध होंगे। अचानक सामने से एक पंजाबी युवक नमूदार होता है और इन बिहारियों के साथ वह भी उसके यहां दिहाड़ी पर जाने का आग्रह करता है। कटारिया उसकी और ध्यानपूर्वक देखता है। इन्द्रसिंह कटारिया ने उसके कंधे पर लटके कढ़ाईदार थैले को देख अनुमान लगा लिया था कि यह सोच कर वह पुलकित हो उठा कि जाटों का लड़का उसके यहां दिहाड़ी करने जा रहा है। उसने लड़के को 'हाँ ' करके अपने स्कूटर के पीछे बैठा लिया तथा दूसरे बिहारी मज़दूरों को माडलटाऊन स्थित गुरूद्वारे में पहुंचने का आदेश देकर वहां से निकल पड़े।

13.7 अस्मिता का संघर्ष

एक अच्छे सरकारी पद पर कार्य करने वाले कटारिया की आज की आर्थिक स्थिति से वह अतीत में झेली गरीबी, दरिद्रता और जिल्लत भरी जिंदगी की तुलना करके, उसे भूल जाना चाहता है। एक नई पहचान के लिए आज भी उसका मानसिक द्वंद्व जारी हैं। उन दर्द भरी यातनामयी यादों से छुटकारा पाने की कोशिश में यादें पुनः पुनः उसे गुजरे हुए अनुभवों की ओर ले जाती है। कटारिया जब सब्जी मण्डी के पास से गुजरे तो सब्जी मण्डी उस की स्मृति में उभर उठी। उसका पिता यहां से सब्जी खरीद कर साइकिल पर लाद गांव-गांव बेचा करता था। एक पूरी बोरी उसकी साइकिल पर लदी होती थी और उस लदे साइकिल को वह बहुत कठिनाई से खींचा करता था। उसके पिता का जाति भेद के प्रति बहुत पुराना और कड़वा अनुभव था। उसके पिता को अब भी भलिभांति स्मरण है कि वह जब ऊंची जाति वालों के दिहाड़ी पर जाया करते थे तो जाट मालिक जब कभी उन्हें खाने की कोई वस्तु दिया करते थे तो वे दूर से ही खाने वाली वस्तु को उछाल दिया करते थे जिसे उन्हें लपकना पड़ता था। उन दिनों एक परम्परा यह भी थी कि यदि कोई दलित किसी जाट या ऊंची जाति के बतर्नों में पानी या खाना खा लेता था तो इन बतर्नों को आग में तपा कर शुद्ध किया जाता था। चपातियों को बांटते समय ऊपर से ही गिराया जाता था ताकि उनके हाथों से छूने से छूत न चिपक जाए। इस भयानक अनुभव से बचने का एक ही उपाय था; वह था जाटों से संपर्क तोड़ देना। जाटों से संपर्क तोड़ देने का अर्थ था भूखों मरना या अन्य कोई पेशा अपनाना। इन्द्रसिंह कटारिया का पिता जाटों वाला खेती का काम छोड़ कर सब्ज़ी बेचने का काम करने लगता है। इस वृतांत में एक क्रान्तिकारी संदेश यह प्रसारित होता है कि अपना परपंरागत पेशा छोड़ कर आधी मानसिक दासता स्वतः समाप्त हो जाया करती है। इन्द्रसिंह कटारिया का पिता भी यह अनुभव करता है। उसके बाद उसे लगता है कि जैसे उसकी जाति बदल गई हो। वह गांव-गांव घूम पर सब्ज़ी बेचा करता और घर लौटते समय उसकी साइकिल के साथ लटकी झोली अनाज के दानों से भरी होती। उन दिनों वस्तु का विनिमय नकद बहुत कम हुआ करता था। दुकान से या फेरी वाले से कोई वस्तु खरीदनी होती थी तो उसके एवज में अनाज दिया जाता था। दलित वर्ग इसी प्रकार खाने-पीने की वस्तुएं प्राप्त किया करता था। कटारिया का पिता महसूस करता है कि उससे कोई उसकी जाति नहीं पूछता।

इन्द्रसिंह कटारिया को यह बातें सोचते हुए हंसी आ जाती है। उसके पीछे बैठा जाटों का लड़का उससे पूछ बैठता है कि उसका गांव कौन सा है। कटारिया उसके गांव का नाम सुनकर चौंक उठता है क्योंकि यह उसकी ननिहाल है। उसे लगता है कि उसने इस लड़के को कहीं देखा हुआ है। कटारिया का मामा गुल्लू गुजण ज़मींदार का नौकर था। उसी ज़मींदार का एक सुन्दर सा गाजर सा लाल लड़का हुआ करता था। कटारिया अनुमान लगाता है कि शायद यह वही लड़का हो। दूसरे ही पल कटारिया इस अनुमान को रद्द भी कर देता है। इसी बीच वह अपने भीतर उपजी खुशी, गर्व तथा ईर्या से आंदोलित हो उठता है जब वह पंजाबी लड़का यह सूचित करता है कि वह अपना खाना साथ नहीं लाया इसलिए वह उनके यहां खाना भी खाएगा। कटारिया अब उससे और बातचीत नहीं करना चाहता क्योंकि उसे यह भय बना रहता है कि और अधिक जान-पहचान बढ़ेगी तो यह पहचान उसके अस्तित्व पर जा कर ही समाप्त होगी। यह एक प्रकार की भारतीय मानसिकता है कि जब दो अपरिचित व्यक्ति मिलते हैं तो एक दूसरे का नाम तथा पेशा जानने की पृष्ठभूमि में अधिकतर उसकी जाति टटोलने की प्रक्रिया छुपी रहती है। यहां उल्लेखनीय तथ्य यह है कि निम्न जाति वाला व्यक्ति इन प्रश्नों से सदैव बचना चाहता है, लेकिन ऊंची जाति वाला व्यक्ति इन प्रश्नों का सामना बड़ी शान से तथा आत्मविश्वास से करता देखा गया है। इन्द्रसिंह कटारिया भी इस स्थिति से बचने की प्रक्रिया अपनाना चाहता है। उसकी मानसिकता पर इन प्रश्नों से बचने का दबाव सदैव बना रहता है वह इन नाजुक पलों में संवादहीनता ही पसंद करता है। उसका मानना है कि 'ज्यादा बातें करने से सारे पर्दे उठने लगते हैं। ऐसा आदमी अपनी ही दृष्टि में गिर जाता है' आदि। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि एक सम्मानित कॉलोनी में रहने तथा सम्मानित पेशा अपनाने के उपरांत भी एक निम्न जाति वाला व्यक्ति कभी अपनी जाति से उपजी कुंठा से पीछा नहीं छुड़ा पाता; बल्कि इन प्रश्नों से वह और भी अधिक भयभीत दिखाई पड़ता है। वह दूसरों की दृष्टि में सम्मानित बना रहे, इसके लिए जाति को छुपाना ही श्रेयकर मानता है। कहानी का यह भाग निम्न जाति के भी उठे द्वंद्व को बहुत महीनता से वर्णन करती है तथा जाति से उपजे दंश को इन्द्र सिंह की मनोदशा द्वारा गहराई से व्यक्त करती आगे बढ़ती है। इन्द्रसिंह का स्कूटर जब टैंपू-ट्राली यूनियन के सामने से गुजर रहा होता है तो उसके पीछे बैठे पंजाबी युवक ने स्कूटर थोड़ी देर के लिए रोकने को कहा तो कटारिया ने स्कूटर रोक दी लेकिन इससे उसे झुंझलाहट भी होती है।

वह पंजाबी युवक उसके स्कूटर से उतर कर सामने खड़े एक ट्रक के चालक से बतियाने लगता है। वह उस ट्रक चालक के पास अपनी पगड़ी के एवज में कुछ पैसे उधार लेता है तथा कहता है कि वह उसके पैसे लौटा कर अपनी पगड़ी वापिस ले लेगा। ट्रक चालक जब अपना ट्रक आगे बढ़ा लेता है तो वह पंजाबी युवक थूकता हुआ अपनी घृणा का प्रदर्शन यह कहते हुए करता है कि 'यह साला कंजर चमार अब सीधे मुंह बात भी नहीं करता, ड्राइवर क्या बन गया, साहब समझने लगा है स्वंय को।' कहानी के इस भाग में जाति के अंदर छुपी घृणा का आभास दिखाई पड़ता है। जिस ड्राइवर से वह कुछ धनराशि उधार लेता है, उसको ही जाति के नाम की भद्दी गालियां देकर अपनी घृणा का प्रदर्शन करता है। उसका यह व्यवहार कटारिया को अवाक कर देता है। कटारिया को यह घृणा से लबरेज संवाद सुन कर बहुत क्रोध आना स्वाभाविक ही है। वह उसका मुंह तमाचे मार-मार कर तोड देना चाहता है तथा उसका हुलिया बिगाड़ देने की इच्छा रखता है। इस घटना से उसका यह अनुमान तो शत-प्रतिशत सही सिद्ध होता कि यह पंजाबी लड़का जाटों का ही लड़का है। वह लड़का उसको इस घटना का पूर्ण विवरण बताता है कि 'यह ड्राइवर हमारे गांव के चमारों का लड़का है कल मेरी दिहाड़ी नहीं लगी थी इसलिए मैंने इससे 20 रूपए मांगे थे, साले ने पगड़ी रख कर पैसे दिए। 'कटारिया को यहां पर यह आत्मसंतुटी प्राप्त होती है कि इसने मुझे पहचाना नहीं। निस्संदेह जाति छुपी हुई ही भली

प्रतीत होती है। भारतीय समाज में जाति छुपाई जा रही है, इसको ख़त्म नहीं किया जा रहा - कहानी का यह अंश पूर्णतया इसी उक्ति को दोहराता हुआ प्रतीत हो रहा है। यहां त्रासदी इस बात को लेकर है कि जिन्हें जाति को नष्ट करने के लिए अग्रिम-पंक्ति मे दिखाई देना चाहिए, वे ही इसे सौ पर्दो में ढंकने के प्रयास में लगे हुए दिखाई पड़ रहे हैं।

13.8 व्यक्ति की पहचान का निर्धारण आर्थिक स्थिति से अधिक जाति स्थिति पर निर्भर

कटारिया अपनी जातिगत पहचान के छुपा कर नया नाम धारण करने के बावजूद और आर्थिक रूप से सबल होने पर भी सदैव जाति कुंठा से ग्रस्त रहता है। उसे यह डर लगा रहता है कहीं जान पहचान वाला उसकी इस पहचान को कहीं खोल न दै। मिस्त्री का काम करने आया पंजाबी लड़का उसे जाना पहचाना लगने लगता है, तो यह डर और गहरा होने लगता है। निर्माण का कार्य कर रहा मिस्त्री वह पंजाबी लड़का अपने कार्य में अनुभवहीन लगता है। सीमेंट में अधिक मात्रा में पानी मिला देने के कारण वह लड़का इन्द्रसिंह कटारिया के कोप का भाजन बनता है। वह उस लड़के को काम से हटा कर एक 'भइया' को उसकी जगह लगा देता है। वह लड़का वस्तुतः अपने काम से जी चुराने का आदी लगता है। वह प्रत्येक कार्य को धीमी गति से करने में विश्वास करता है। उदाहरणतया जब वह ईंटें उठाने का कार्य करता है या ईटों को भिगोने पर लगाया है तो सब कार्य धीमी गति से करता है। कटारिया उसे तेज़ कार्य न करने के कारण उसके स्वास्थ्य के बारे पूछता है ताकि उसे यह अहसास हो कि उस पर तीक्ष्ण दृष्टि रखी जा रही है। वह उस लड़के का नाम भी पूछता है। लड़का अपना नाम 'हरदम' बताता है। लड़के का नाम ज्ञात होते ही कटारिया एकदम चिंहुक उठता है। उसे अहसास होता कि जैसे किसी बिच्छु ने डंक चुभो दिया हो। उसके ज़हन में गज्जण ज़मींदार के गाजर रंग के लड़के का वजूद उभर आता है। उसे उस लड़के का स्मरण हो आता है जो कि उसके पीछे-पीछे घूमता रहता था। कटारिया के मुंह से गंदी सी गाली एकदम रेंग गई। वह उसको वहीं छोड़ कर नीचे पत्नी के पास आ गया जो कि टी.वी.पर कोई सीरियल देख रही थी। वह थोड़ी देर वहां रूका फिर शीघ्रता से ऊपर आ गया। वह पंजाबी लड़का एक ईंट के टुकड़े से अपनी जूती खुरचने में लगा हुआ था। ऊपर आते ही उसने उस पंजाबी युवक को उसके परिवार का नाम पूछा। लड़के ने जिस गोत्र का नाम लिया था वह कटारिया की ननिहाल के घर के सामने ही थी। अब उसे पूर्ण विश्वास हो चला था कि यह सचमुच ही गज्जण सिंह का ही लड़का था। लेखक यहां कटारिया की मनोस्थिति का वर्णन करते हुए कहता है कि उसकी छाती जैसे गर्व से फूल जाती है। उसे गर्व होता है कि उसने एक ऊंची जाति जाट को अपने यहां मज़दूर लगा कर जैसे कोई पुराना बदला चुका लिया है। लेखक की इन पंक्तियों में जाति मे निहित एक विशेष प्रकार के मनोविज्ञान की झलक मिलती है। इस कहानी का केन्द्रीय चरित्र इन्द्रसिंह कटारिया उस समय वैसा ही महसूस कर रहा था जैसे ऊंची जाति सदियों तक निम्न जाति को अपने पांवों पर बिछते हुए देखकर अपनी जातिगत उच्चता पर गर्व करता रहा है। यह मनोविज्ञान भारत की सभी जातियों पर प्रभावी देखा जा सकता है। अपने से निम्न को हेयदृष्टि से देखता है, वैसा ही कहानी के इन दोनों पात्रों द्वारा महसूस किया जा रहा है।

इस पंजाबी युवक हरदम को शायद नशे की लत भी है। चाय के समय वह पानी के साथ एक गोली गटक लेता है। कटारिया निरंतर उस लड़के की गतिविधियों पर दृष्टि रखे हुए है। वह महसूस करता है कि यह लड़का निरंतर काम से जी चुरा रहा है तथा ईंटें रखकर

सीढ़ियों में ही बैठा हुआ है। उसकी दृष्टि कुछ विशेष वस्तु को ताक रही है। लेखक के अनुसार उसका ध्यान भी उखड़ा-उखड़ा दिखाई पड़ रहा है। वह किसी और ही दुनिया में गुम दिखाई पड़ रहा हैं तथा अपने होठों को बना-बिगाड़ रहा है। मुंह से वह कुछ बुदबुदा भी रहा है। कटारिया इसका कारण पूछते हुए उसे घर जाने की सलाह भी देता है। कटारिया को यह पूर्ण विश्वास हो चला है कि यह जाटों का लड़का किसी मद्यपान का आदी है। वह उसको काम से हटाने का मन बना रहा होता है, क्योंकि लेखक के अनुसार उसे यह भय है कि काम की उसकी धीमी गति अन्य कार्यरत मज़दूरों को भी प्रभावित कर सकती है। लड़के ने अपनी मदमस्त आंखों से कटारिया को झांका। वह लड़के की दृष्टि की चुभन को पता नहीं क्यों सहन नहीं कर पाया।

वह लड़का अब तेजी से कार्य कर रहा था। कटारिया यह समझने में असमर्थ था कि लड़के में इतनी चपलता अचानक कहां से प्रवेश कर गई है। वकील कटारिया यहां देखता है कि यह पंजाबी लड़का हरदम टी.वी. के सामने बैठी उसकी पत्नी को देखता हुआ एक कुटील सी हंसी हंसता हुआ आगे बढ़ जाता है तथा मुंह में बुदबुदाता है कि- 'जो भी हो, है यह वही...।' कटारिया को इस जाट लड़के की भाव भांगिमाएं जरा भी नहीं सुहातीं। वह उसके दांत तोड़ देना चाहता है। परन्तु वह अन्य मज़दूरों की उपस्थिति के कारण ऐसा करने में असमर्थ होता है। कहानी के इस अंश का विवरण ठीक वही स्थितियां उत्पन्न करता है जो कि किसी व्यक्ति द्वारा अपनी जाति छुपाने में असमर्थ रहने पर पैदा होती हैं। दलित-साहित्य में ऐसी स्थितियों का रोचक वर्णन बहुत पढ़ने को मिलता है। दलित जाति के व्यक्ति की मनोवस्था का वर्णन इन परिस्थितियों में बहुत वेदनाएं उपजाता है। इस अंश में कहानी का केन्द्रीय पात्र अधिवक्ता इन्द्रसिंह कटारिया उस पंजाबी युवक की जाति को चिन्हित तो कर लेता है लेकिन वह स्वंय इस तथ्य से अनभिज्ञ दिखाया गया है कि वह जाटपुत्र भी उसकी जाति की ख़ोज कर चुका है। वह उसकी भाव-भंगिमाएं महसूस कर अपने मन में भारी भरकम गालियां देकर अपना क्रोध शांत कर लेता है। वह यह महसूस करता है कि यह लड़का उसकी पत्नी को उसके सुन्दर होने के कारण देख रहा है लेकिन लड़का उसकी सुन्दरता को नहीं, उसकी जाति की पहचान को पुख्ता करने के लिए लगातार उसकी और निहार रहा है। वकील कटारिया इस स्थिति से यहां नितांत बेखबर दिखाई पड़ता है। इसी धुन में वह अपनी पत्नी को भी यह अहसास करवा देता है कि यह लड़का तुम पर लट्टू हो रहा है।

ईंटें उठाता हुआ हरदम अचानक कटारिया के सामने तन कर खड़ा हो जाता है तथा अर्द्ध नशे की दशा में उसके सामने प्रश्न उछाल देता है कि उसकी गांव कोट फत्तेह में क्या रिश्तेदारी है? कटारिया साफ मना करते हुए उत्तर देता है कि उसकी वहां कोई रिश्तेदारी नहीं। लेकिन इस उत्तर को नकारता हुआ वह लड़का जैसे कटारिया को धरती पर पटकने की पूरी तैयारी किए बैठा हो। वह बिना किसी भूमिका के कटारिया को कह देता है कि उसे तो लगता है कि जैसे गूल्लू चमार के घर उनकी कोई रिश्तेदारी अवश्य है। कटारिया तो जैसे इस उद्घोषणा से अर्श से फर्श पर आ गया हो। उसका हृदय जैसे बेंध दिया गया हो। कटारिया इस क्रोध, हीनता तथा ग्लानि की स्थिति से उभरना चाहता है। वह इस रिश्तेदारी को एकदम नकारना चाहता है तथा हरदम को यह कह कर कि उसकी वहां कोई सगी रिश्तेदारी नहीं, वह अपना चुपचाप काम करे। वह इसी आहत अवस्था में अपने मकान की सिढ़िया उतर नीचे आ जाता है। लेकिन उसके भीतर एक अंतर्द्वद्व छिड़ जाता है। वह सोचता है कि उसने यह सफेद झूठ क्यों बोला। क्या यह सफेद झूठ बोलने से उसका अपना ननिहाल छूट जाएगा क्या? ऐसे बहुत से प्रश्न उसके अंतर्मन मे उत्पन्न हो जाते है। दूसरे ही क्षण वह सोचता है कि यह झूठ तो वह कई सालों से कहता चला आ रहा है। वह जुल्लड़ से कटारिया बना बैठा है। इस बोझ को हल्का करने के लिए वह

स्वंय ही तर्क उठाने लगता है। वह सोचता है कि यह आवश्यक तो नहीं है कि वह जुल्लड़ बन कर उनकी दासता स्वीकार करता रहता।

इस घटना के उपरांत कटारिया को लगने लगा कि वह सामने से निकलता हुआ उसका उपहास उड़ा रहा है। वह उसके समक्ष स्वंय को बौना महसूस करने लगा। उस लड़के की हंसी विा में बुझी महसूस होने लगी। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह एक वकील होते हुए भी इस धरती का अति क्षुद्र जीव है। कहानी का यह अंश निम्न जाति से उपजी हीन भावना से ओत-प्रोत दिखाई पड़ता है। महान से महान व्यक्ति भी इन स्थितियों में स्वंय को असहाय पाता है। कोई भी मनोविज्ञान उसको इस स्थिति से उबार नहीं पाता। उसका पूर्ण वजूद जैसे झुलस जाता है।

13.9 निम्नताबोध से बौना होता व्यक्तित्व

निम्नजाति बोध के उत्पन्न कुंठा एक अच्छे-भले, खाते पीते व्यक्ति को अपनी ही नजर में बौना बना देती है।

दोपहर का समय हो चुका था। मज़दूर तथा मिस्त्री खाना खाने नीचे आ चुके थे। वे नीचे के नल से हाथ धोने लगे थे। कटारिया इस प्रतीक्षा में था कि वह जाट लड़का हरदम उससे खाना मांगेगा। वस्तुतः हरदम ने मज़दूर मंडी से आते समय कटारिया से कह दिया था कि वह दोपहर का खाना उनके यहां खाएगा। वह इसकी प्रतीक्षा में लगा हुआ था। वह सोच रहा था कितना अच्छा लगेगा जब एक जाट का लड़का उससे मांग कर खाना खाएगा। तब उसकी इच्छा पर निर्भर होगा कि वह उसको खाना कैसे दे। थाली में दे या अचार डाल कर दूर से ही फैंक दे। जब कुछ देर तक वह लड़का खाने के लिए नहीं आया तो वह खुद ही उसको देखने निकल पड़ा। वह उसे अंदर ला कर खाना खिलवाना चाहता था। यदि उसको कटारिया की जाति का पता चल ही गया है तो क्या हुआ। कटारिया उसको खाना खिला कर अपनी हीन भावना से उबरना चाहता था। भीतर वह शीशे के सामने खड़ा यही सोच रहा था। सामने से हरदम आता हुआ दिखाई दिया। उसने बाएं हाथ का अंगूठा उसने दाएं हाथ से दबाया हुआ था। पहले तो कटारिया को यह सोच कर बुरा लगा कि यह सीधा अन्दर घुसा चला आ रहा है। फिर उसका अंगूठा देख कर वह थोड़ा सा नर्म पड़ गया। वह सीधा-अपना अंगूठा पकड़े-कटारिया के पास आ खड़ा हुआ। यहां उल्लेखनीय बात यह है कि हरदम के चेहरे पर वेदना के चिन्ह् कहीं नहीं दिखाई पड़ रहे थे। कटारिया के पूछने पर उस ने बताया कि उसके अंगूठे पर बिच्छू ने डंक मारा है। कटारिया ने उसके अंगूठे को बहुत ध्यान से देखा। उसको अंगूठे पर किसी भी प्रकार के डंक का निशान दिखाई नहीं पड़ा। कटारिया ने भांप लिया था कि यह लड़का या तो काम से जी चुराना चाहता था या यहां से भागना चाहता था, क्योंकि इस धूप से तपती ईंटों में बिच्छू होने की संभावनाएं बहुत कम थी। लड़के ने अपनी आधी दिहाड़ी के तीस रूपए मांग लिए थे। उसका कहना था कि वह बाहर जा कर टीका वगैरा लगवाना चाहता है। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं थी। वह वहां से निकल जाना चाहता था। कटारिया ने उसके चेहरे को बहुत ध्यान से देखा था। कटारिया ने उसकी आंखों में किसी प्रकार की वेदना के चिन्ह् नहीं देखें। उसको उसकी आंखों में वेदना के स्थान पर कुछ व्यंग्य के चिन्ह् उभरे दिखाई पड़े। उसे लगा कि उसकी आंखें जैसे घोषित कर रही हों कि उस ने कटारिया की असली पहचान सात समुद्रों से भी निकाली हो। क्योंकि उसने उसके भीतर छुपे गुल्लु चमार के भानजे को ढूंढ निकाला था।

इस कहानी की अंतिम पंक्तियां बहुत मार्मिक बन पड़ी हैं। लेखक का यह कथन कि इस बिच्छू का डंक उस जाट-पुत्र हरदम को नहीं, बल्कि कटारिया के संपूर्ण वजूद को लगा

है, कहानी के सारांश को व्यक्त कर जाता है। इस प्रकार यह कहानी अपनी अंतिम पंक्तियों द्वारा जाति-पांति के दंश को बखूबी चित्रित करने के साथ-साथ भारतीय समाज में व्याप्त इस विसंगति को उसके गर्भ से उभार कर, ऊपरी सतह पर ले आने में सक्षम है। कहानी के पात्र - चोपड़ा तथा कटारिया के चरित्रों द्वारा यह सिद्ध करने में भी सफल है कि जातियों में व्याप्त उपजातियों का दर्शन वर्णव्यवस्था की कड़ियों को और भी अधिक सुदृढ़ करता आ रहा है।

13.10 सारांश

पंजाबी की 'हड्डा रोड़ी और रेहड़ी' और 'बिच्छू' कहानियाँ दलित जीवन की भीशण सच्चाइयों को हमारे सामने प्रस्तुत करके जाति व्यवस्था के क्रूर अमानवीय ढाँचे के उन्मूलन की प्रेरणा देती हैं। जाति संरचना ने दलित को न केवल निम्न दशा में रखने का जाल रचा बल्कि अत्यल्प आय वाले अत्यंत घिनौने और मलिन काम करने की पाबंदी भी लगा दी 'हड्डा रोड़ी और रेहड़ी' दलित की इस तकलिफदेह काम करने की मजबूरी और विडम्बना को उभारती हैं। जाति आधारित व्यवसायों को छोड़कर अच्छी आर्थिक दशा को प्राप्त होने के बाद भी, जीवनाधार बनी रेहड़ी को बचाए रखने की बाप और बेटे प्रगाश की कोशिश श्रमसाध्य काम के प्रति उनके मन में जगे सम्मान को दर्शाता है। भले ही अन्यों की नजर में वह घृणा पैदा करके प्रगाश के अतीत को जानने के बाद उसके तय होते रिश्ते टूट रहे हो। जाति के निर्धारण और धर्म के आदेश ने जिन्हें मात्र तिरस्कारपूर्ण व्यवसाय सौंपे वहीं उनके प्रति घृणा का भाव भी रखें, यह बीमार समाज की सोच को दर्शाता है। लेखक ने इस कहानी के द्वारा जातिप्रथा के उन्मूलन की वैचारिकी को केन्द्र में रखकर कहानी के पात्रों द्वारा श्रम के महत्व को बढ़ाया है। 'बिच्छू' कहानी निम्नताबोध के अहसास से दबे एक दलित सरकारी अधिकारी के आस्मिता संघर्श को रूपांयित करने में अत्यंत सफल हुई है। एक ओर जाति की पहचान को छुपाकर सवर्णों के बीच सम्मान से जीने की इच्छा तो दूसरी ओर हीनताबोध से मुक्ति की छटपटाहट के बीच फँसे दलित अधिकारी की द्वधा मानसिक दशा को कहानी में बेहतर तरीके से उभारा है। पंजाबी मजदूर द्वारा इंद्रसिंह कटारिया के अतीत को जानने की कोशिश उसके भीतर के जातिदंभ को बार–बार उकसाता है। उसे काम करते समय यह भाक बराबर रहता है कि बड़ा अफसर बना यह व्यक्ति जो बंगले में रहता है हो न हो उसके गांव के चमार का भाँजा ही है। जाति के अहसास के कारण उसका काम में मन भी नहीं लगता। उसके अतीत को जानने के लिए बिना दिक्कत वह रोजगार देने वाले साहब को पूछने से डरता नहीं। जाति की पहचान इंसान को चिंचड़ी की तरह चिपकी रहती है। दूसरा व्यक्ति जब तक सामने के व्यक्ति की जाति का पता नहीं लगा लेता, वह मानसिक द्वंद्व में फँसा रहता है। जाति व्यवस्था न केवल सामाजिक श्रेणी निर्धारित करती है बल्कि सांस्कृतिक और आर्थिक संबंधों को भी तय करती है। पहचान की त्रासदी नई पीढ़ी में इसलिए मौजूद है क्योंकि दलित चेतना के प्रभाव में दलित दमन या उत्पीड़न का मुकाबला करने के लिए वे सक्षम हो चुके हैं। शिक्षित होकर दलित वर्ग मुक्ति की राह पर अग्रसर हैं।

खंड के प्रश्न

1. ओड़िसा में जाति–प्रथा के विरोध में उभरे सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलनों पर प्रकाश डालिए।
2. ओड़िया के दलित साहित्य लेखन की पृष्ठभूमि और परिवर्तनकामी चेतना के पहलुओं पर प्रकाश डालें।

3. 'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' तथा 'उम्मीद अब भी बाकी है' इन कहानियों का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।
4. 'उम्मीद अब भी बाकि है' कहानी में अभिव्यथा दलित स्त्री के संघर्षशील बिंदुओं को रेखांकित कीजिए।
5. 'वर्णबोध और मधुबाबू की कहानी' में स्वतंत्रता के बाद भी शिक्षा से वंचित दलितों की समस्याओं को उठाया गया है। उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
6. 'गाँव का कुआं' कहानी की कथावस्तु पर प्रकाश डालिए।
7. 'गाँव का कुआं' कहानी में अभिव्यक्त दलितों का उत्पीड़न एवं सवर्णवादियों के अमानवीय कृतों की चर्चा कीजिए।
8. 'गाँव का कुआं' कहानी का चरित्र चिदंबरम पर टिप्पणी लिखें।
9. 'गाँव का कुआं' कहानी में अभिव्यक्त दलित चेतना और संघर्ष के पहलुओं को विश्लेषित कीजिए।
10. 'गाँव का कुआं' कहानी की भाषा और शिल्प पर टिप्पणी करें।
11. 'परती जमीन' कहानी की मूलवस्तु और संवेदना स्पष्ट कीजिए।
12. 'परती जमीन' कहानी आर्थिक शोषण के जातिपरक ढाँचे को उजागर करती है। सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
13. 'परती जमीन' कहानी का धार्मिक ताना–बाना पर टिप्पणी लिखिए।
14. 'परती जमीन' कहानी की भाषा और शिल्प पर टिप्पणी लिखिए।
15. कन्नड दलित साहित्य की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
16. देवनूर महादेव का भाषा संबंधी दृष्टिकोण–टिप्पणी लिखिए
17. 'अमावस' कहानी की विषय वस्तु और संवेदना पर प्रकाश डालिए।
18. 'अमावस' कहानी की भाषा और प्रतीकात्मकता–टिप्पणी लिखिए।
19. 'मोची की गंगा' कहानी की विषय वस्तु और संवेदना स्पष्ट कीजिए।
20. 'मोची की गंगा' कहानी में सांस्कृतिक विरासत और समकालीनता का चित्रण है। स्पष्ट कीजिए।
21. 'मोची की गंगा' कहानी की भाषा और शिल्प–टिप्पणी लिखिए।
22. 'हड्डा रोडी और रेहडी' कहानी की कथावस्तु पर प्रकाश डालिए।
23. 'हड्डा रोडी और रेहडी' कहानी में अभिव्यक्त पंजाबी दलित जीवन और संघर्ष चेतना के पहलुओं को सोदाहरण स्पष्ट करें।
24. 'हड्डा रोड़ी और रेहड़ी' कहानी में प्रस्तुत आर्थिक शोषण में जाति संरचना की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
25. 'हड्डा रोड़ी और रेहड़ी' कहानी के प्रमुख चरित्र प्रगाश की चरित्र विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए।
26. 'बिच्छू' कहानी की कथावस्तु और संवेदना पर प्रकाश डालें।
27. 'बिच्छू' कहानी में मजदूर दलित वर्ग की जीवन व्यथाओं को मुखर किया गया है। सोदाहरण स्पष्ट करें।
28. 'बिच्छू' कहानी में अभिव्यक्त दलित अस्मिता एवं संघर्ष चेतना को रेखांकित कीजिए।
29. जतिगत पहचान को छुपाने की कुंठाग्रस्त मानसिकता को 'बिच्छू' के माध्यम से रेखांकित कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

दलित साहित्य और मुख्य धारा, ओम प्रकाश वाल्मीकि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

दलित साहित्य : वेदना और विद्रोह, शरण कुमार लिंबाळे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, रमणिका गुप्ता, समीक्षा प्रकाशन, नई दिल्ली।

लोकधर्मी साहित्य की दूसरी धारा, चौथीराम यादव, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., दरियागंज, नई दिल्ली।

आंबेडकरवादी साहित्यविचार, प्रा. दामोदर मोरे, लॉंगमार्च प्रकाशन, मुंबई।

दलित साहित्य : एक मूल्यांकन, डॉ. चमन लाल, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा।

हिंदी दलित कथा–साहित्य अवधारणाएं और विधाएं, डॉ. रजतरानी 'मीनू', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., दरियागंज, नई दिल्ली।

भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य, संपादक – पुन्नीसिंह, कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

आंबेडकरवादी चिंतन, संपादक – तेजसिंह, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली।

युद्धरत आम आदमी (दलित चेतना साहित्य विशेषांक), संपादक – रमणिका गुप्ता, रमणिका फाउंडेशन, नई दिल्ली।

दलित अस्मिता, संपादक – विमल थोरात, भारतीय दलित अंध्ययन संस्थान, नई दिल्ली।

दलित साहित्य वार्षिकी, संपादक – जयप्रकाश कर्दम, अकादमी प्रतिभा, एकता अपार्टमेंट, नई दिल्ली।